



कृषक मंच

कृषक मंच

मासिक कृषि पत्रिका

खंड-2 अंक- 3, मार्च- 2026





कृषक मंच

मासिक कृषि पत्रिका

ISSN: 3049-2211

सम्पादक मंडल

डा. देवराज सिंह

मुख्य सम्पादक

सहायक प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष

सब्जी विज्ञान विभाग

कृषि विज्ञान विभाग, इनवर्टिस विश्वविद्यालय, बरेली (उ.प्र.)।

प्रिया पाण्डेय

सहायक मुख्य सम्पादक

शोधार्थी

ए.के.एस. विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)।

सहायक सम्पादक

डा. विक्रमा प्रसाद पाण्डेय

पूर्व अधिष्ठाता (उद्यान महाविद्यालय)

आ. न. दे. कृ. एवं प्रौ. वि.वि., कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)।

डा. अरविन्द कुमार चौरसिया

सहायक प्राध्यापक (उद्यान विज्ञान)

पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग (मेघालय)।

डा. रविशंकर

सहायक प्राध्यापक (कीट विज्ञान)

स.व.भा.प.कृ. एवं प्रौ. वि.वि., मेरठ (उ.प्र.)।

डा. देवेश तिवारी

सहायक प्राध्यापक (उद्यान विज्ञान)

पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, तूरा कैंपस (मेघालय)।

डा. महेन्द्र कुमार यादव

सहायक प्राध्यापक (सब्जी विज्ञान)

आर.एन.बी. ग्लोबल विश्वविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान)।

डा. वर्तिका सिंह

सहायक प्राध्यापक (फल विज्ञान)

आई.टी.एम. विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)।

डा. सचि गुप्ता

सहायक प्राध्यापक (पुष्प विज्ञान)

आ. न. दे. कृ. एवं प्रौ. वि.वि., कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)।

डा. रविकेश कुमार पाल

सहायक प्राध्यापक (सस्य विज्ञान)

रामा विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)।

डा. सरिता

सहायक प्राध्यापक (पौध रोग विज्ञान)

आर.एन.बी. ग्लोबल विश्वविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान)।

डा. कुमार अंशुमान

सहायक प्राध्यापक (मृदा विज्ञान)

के.एन.आई.पी.एस.एस., सुल्तानपुर (उ.प्र.)।

डा. मंजीत कुमार

सहायक प्राध्यापक

लिंगायस विद्यापीठ, फरीदाबाद, हरियाणा।

डा. विवेक पाण्डेय

सहायक प्राध्यापक (सस्य विज्ञान)

इनवर्टिस विश्वविद्यालय, बरेली (उ.प्र.)।

डा. कल्याण सिंह

स्वतंत्र लेखक

बांदा कृ. एवं प्रौ. वि.वि., बांदा (उ.प्र.)।

डा. शिवशंकर पटेल

शोधार्थी

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)।

विषय वस्तु

क्र.सं.	विवरण	पृष्ठ सं.
1	फसलों पर नमी तनाव का प्रभाव एवं प्रबंधन का कार्यान्वयन।	4-8
2	करोँदा की खेती एवं प्रबंधन: किसानों के लिए एक लाभकारी विकल्प।	9-12
3	कृषि प्रबंधन में ड्रोन का महत्व।	13-14
4	चने की वैज्ञानिक खेती।	15-18
5	भारत के उन्नत कृषि में पुस्तकालय का महत्व।	19-21
6	पूर्वी उत्तर प्रदेश में केंचुआ जैव विविधता पारिस्थितिकी और कृषि महत्व।	22-24
7	भिंडी: वैज्ञानिक खेती और औषधीय महत्व।	25-28
8	रागी: कैल्शियम से भरपूर अनाज और हड्डियों का रक्षक।	29
9	बागवानी और नई तकनीकों से बदली किसान पवन सरकार की किस्मत।	30-32
10	प्रपंच (जाल): कीट नियंत्रण की यांत्रिक विधियाँ।	33-36
11	जैविक मलच से खरपतवार प्रबंधन : एक परिदृश्य।	37-42
12	गोभी वर्गीय फसलों की सतत उत्पादन प्रणाली पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव।	43-47
13	परम्परागत खेती छोड़ अपनाई वैज्ञानिक तकनीक: सरसों ने बदली नागौर के किसान की तकदीर।	48-49
14	गोबर की खाद (फार्म यार्ड मैन्योर) से समृद्धि।	50-54
15	कम लागत एवं पानी में चिया सीड की खेती: किसानों के लिए आय का नया स्रोत।	55-56
16	कोदरा मिलेट: पारंपरिक अनाज से आधुनिक रसोई तक पौष्टिक रेसिपीज़ का खजाना।	57-58
17	मृदा सौरकरण: बरसाती मौसम में टमाटर की नर्सरी तैयार करने की एक सर्वोत्तम कृषि पद्धति।	59-60
18	जलवायु संवेदी नवाचारों से ऊसर भूमि का हरित पुनर्जागरण।	61-63
19	शहतूत की व्यावसायिक खेती: एक वैज्ञानिक मार्गदर्शिका।	64-66
20	ग्रामीण भारत में जन सेवा केंद्र (कॉमन सर्विस सेंटर): डिजिटल समावेशन की दिशा में एक महत्वपूर्ण पहल।	67-69
21	स्मार्ट फार्मिंग: आईओटी-सक्षम सेंसर और ड्रोन द्वारा प्रिसिजन एग्रीकल्चर।	70-71





फसलों पर नमी तनाव का प्रभाव एवं प्रबंधन का कार्यान्वयन

डॉ० सुनील कुमार मंडल

सहायक प्राध्यापक

क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, झंझारपुर

डॉ० राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, समस्तीपुर, बिहार

नमी का तनाव एक प्रकार का अजैविक तनाव है जो तब होता है, जब पौधों के उत्तकों में नमी कम हो जाती है। जल तनाव वायुमंडलीय और मृदा जल उपलब्धता की प्रतिक्रिया में तब होता है, जब वाष्पोत्सर्जन की दर जड़ों के द्वारा जल अवशोषण की दर से अधिक हो जाती है और पौधों की कोशिकाएँ स्फीत दाब (किसी भी पौधे की कोशिका के अंदर पानी का दबाव) खो देती है। नमी तनाव को दो मुख्य मापदंडों (मीट्रिक) के अंतर्गत जल विभव (जल सामर्थ्य) और जल मात्रा के द्वारा वर्णित किया गया है।

नमी के तनाव का रंध्रों के खुलने पर प्रभाव पड़ता है जिसके कारण मुख्य रूप से रंध्र बंद हो जाते हैं, जिससे कार्बन डाइऑक्साइड के अवशोषण की मात्रा कम हो जाती है। रंध्रों के बंद होने से वाष्पोत्सर्जन की दर भी धीमी हो जाती है, जो पानी के नुकसान को सीमित करता है और नमी तनाव के कारण होने वाले प्रभावों को रोकने में मदद करता है। यह बंद होना जड़ों के द्वारा सुखी मिट्टी को महसूस करने और प्रतिक्रिया में हार्मोन के उत्पादन से शुरू हो सकता है जो जाइलम के माध्यम से पत्तियों में ले जाने पर रंध्र चालकता और बढ़ती कोशिकाओं की दीवार की

विस्तारशीलता को कम कर देगा। इससे वाष्पोत्सर्जन, प्रकाश संश्लेषण और पत्ती के विस्तार की दर कम हो जाती है। एबीए बढ़ती जड़ कोशिका की दीवारों को ढीला भी करता है और बदले में मिट्टी के अन्दर पानी खोजने के प्रयास में जड़ भी वृद्धि को बढ़ाता है।

नमी तनाव की श्रेणी:

नमी तनाव को अक्सर जैविक और अजैविक श्रेणियों में बाँटा जाता है।

(क) जैविक तनाव

- ❖ **पत्तियों में पानी की कमी:** पौधों की पत्तियों में पानी की कमी का मतलब है कि उन्हें पर्याप्त मात्रा में पानी नहीं मिल रहा है।
- ❖ **सुखा:** यह एक प्रकार का जैविक तनाव है जो पौधों की वृद्धि और विकास को प्रभावित करता है।

(ख) अजैविक तनाव

- ❖ **मिट्टी की नमी:** मिट्टी में पर्याप्त पानी की कमी होने पर पौधों में नमी का तनाव होता है।



❖ **टेन्सियोमीटर:** यह एक ऐसा उपकरण है जिसका उपयोग मिट्टी में नमी की मात्रा को मापने के लिए किया जाता है।

नमी तनाव के प्रकार:

पौधों में नमी का तनाव मुख्य रूप से दो प्रकार का होता है, जो जल की उपलब्धता में कमी या अधिकता के कारण होता है।

(क) **सुखे का तनाव (पानी की कमी):** यह तनाव तब होता है, जब पौधों को उनकी उपलब्धता के अनुसार पानी नहीं मिल पाता है, यानि मिट्टी में जल की कमी होती है।

इस स्थिति में, वाष्पोत्सर्जन दर जड़ों के द्वारा पानी के अवशोषण की दर से अधिक हो जाती है, जिससे कोशिकाएँ अपना स्पीति दाव (टैंगर प्रेशर) खो देती है। इसके कारण पौधे मुरझा जाते हैं, वृद्धि रूक जाती है और गंभीर मामलों में पौधे मर भी जाते हैं।

(ख) **जलाक्रान्ति तनाव (जल भराव से उत्पन्न तनाव):** यह तनाव तब होता है, जब मिट्टी में पानी की अधिकता होती है, जिससे जड़ों के चारो तरफ ऑक्सीजन की कमी हो जाती है।

इस स्थिति में मिट्टी के छिद्र पानी से भर जाते हैं, जिससे हवा और ऑक्सीजन की आपूर्ति बाधित होती है। ऑक्सीजन की कमी से जड़ों का श्वसन, पोषक तत्वों का अवशोषण और अन्य कार्य सीमित हो जाते हैं, जिससे पौधों में तनाव उत्पन्न होता है।

पौधों में नमी तनाव का कारण:

पौधों में नमी तनाव के मुख्य कारण वर्षा की कमी एवं सुखा, अत्यधिक गर्मी और वाष्पोत्सर्जन की उच्च दर, मिट्टी में नमी धारण की क्षमता कम होना और खराब सिंचाई जल प्रबंधन पद्धति है। ये सभी कारण मिट्टी में पानी की कमी होने की समस्या उत्पन्न करते हैं, जिससे वाष्पोत्सर्जन की दर अवशोषण से अधिक हो जाती है और पौधे नमी के तनाव में आ जाते हैं। पौधों में नमी तनाव के कारण का विस्तृत विवरण निम्न उल्लेखित है:

- ❖ **वर्षा की कमी और सुखा:** वारिश की कमी से मिट्टी में नमी कम हो जाती है, जो पौधों के लिए पानी का मुख्य स्रोत है।
- ❖ **अत्यधिक गर्मी और वाष्पोत्सर्जन:** उच्चतम तापमान से वाष्पोत्सर्जन (पौधों से पानी का वाष्पीकरण) की दर बढ़ जाती है। यदि वाष्पोत्सर्जन, अवशोषण से अधिक हो जाता है तो पौधों में तनाव उत्पन्न होता है।
- ❖ **मिट्टी की खराब जल धारण क्षमता:** ऐसी मिट्टी जो पानी को ठीक ढंग से रोक नहीं पाती, बल्कि जल्दी सुख जाती है, जिससे पौधों को पर्याप्त पानी नहीं मिल पाता।

❖ **अनुचित सिंचाई जल प्रबंधन:** अनियमित या अपर्याप्त सिंचाई भी नमी की कमी का कारण बन सकती है।

❖ **जल संचयन की समस्या:** जहाँ पानी को मिट्टी में जमा होने की समस्या होती है, वहाँ भी पौधों में नमी की कमी हो सकती है।

❖ **बड़ी मात्रा में पानी का वाष्पीकरण:** वाष्पीकरण के कारण मिट्टी की उपटी परत से पानी उड़ जाता है। परिणामतः पौधों में नमी की कमी हो सकती है।

पौधों में नमी तनाव के अन्य महत्वपूर्ण कारण

पौधों में नमी के तनाव के मुख्य कारण अत्यधिक सुखा, बाढ़ और जल भराव जैसे पर्यावरणीय कारण हैं। इसके अतिरिक्त मिट्टी की लवणता, पोषक तत्वों की कमी और खराब गुणवत्ता वाले पानी का उपयोग भी नमी तनाव में महत्वपूर्ण योगदान करते हैं।

- ❖ **अत्यधिक सुखा:** वर्षा की कमी के कारण मिट्टी में नमी की कमी हो जाती है, जो नमी के तनाव का सबसे आम कारण है।
- ❖ **बाढ़ और जल भराव:** जब मिट्टी में पानी बहुत अधिक हो जाता है, तो जड़ों को ऑक्सीजन नहीं मिल पाती है, जिससे पौधों में नमी तनाव उत्पन्न होता है।
- ❖ **मिट्टी की लवणता:** मिट्टी में लवणों या सोडियम की अधिक मात्रा पानी के अवशोषण को जटिल बना देती है, जिससे पौधों में नमी की कमी हो जाती है।
- ❖ **पोषक तत्वों की कमी:** खास तौर पर रेतीली मिट्टी में नाइट्रोजन जैसे पोषक तत्वों की कमी पौधों में तनाव सुखने का कारण बन सकती है।
- ❖ **उच्च तापमान:** वायुमंडलीय उच्च तापमान के कारण मिट्टी में वाष्पीकरण तेजी से होता है, जिससे मिट्टी में नमी का स्तर कम हो जाता है। परिणामतः पौधों में नमी का तनाव उत्पन्न हो जाता है।
- ❖ **खराब गुणवत्ता वाला पानी:** खराब गुणवत्ता वाला पानी भी पौधों को ठीक से विकसित नहीं होने देता है और तनाव पैदा कर सकता है।
- ❖ **कीटनाशक, फफूंदनाशक और खरपतवारनाशक:** ये रासायन भी पौधों पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से तनाव डाल सकते हैं।

पौधों में नमी तनाव के लक्षण:

पौधों में नमी तनाव के लक्षणों में पत्तियों का मुरझाना, पीली पड़ना, झुलसना, विकास धीमा होना और कभी-कभी पत्तियों का मुड़ना/सिकुड़ना शामिल है। ये लक्षण पौधों की कोशिकाओं के दबाव में कमी के कारण होते हैं, जिससे पत्तियाँ सुख जाती हैं और अंततः गिरने



लगती है। पौधों में नमी तनाव के सामान्य लक्षण का विस्तृत विवरण निम्न उल्लेखित है।

- ❖ **पत्तियों का झूलसना:** पौधों की पत्तियां पीली और झूलने लगती हैं, जो नमी की कमी का सबसे आम शुरूआती संकेत है।
- ❖ **पत्तियों का पीला पड़ना:** पत्तियां पीली हो जाती हैं, क्योंकि नमी की कमी प्रकाश संश्लेषण की क्रिया को रोकती है।
- ❖ **पत्तियों का किनारा झूलसना या भूरा होना:** नमी की कमी से पत्तियों के किनारे सुख जाते हैं और भूरे या जले हुए दिखाई देते हैं।
- ❖ **पत्तियों का मुड़ना:** मक्के जैसे कुछ फसलों में पत्तियों नमी की कमी होने पर खूद के मोड़ लेती हैं, ताकि तेज धूप से सम्पर्क कम हो सके।
- ❖ **विकास धीमा होना:** पौधों में विकास धीमा हो जाता है, क्योंकि कोशिकाओं में दबाव कम हो जाता है।
- ❖ **पत्तियों का गिरना:** पौधों में नमी का तनाव बढ़ने पर, पत्तियां जल्दी गिर जाती हैं।
- ❖ **फूलों के गुच्छे मुरझाना:** कुछ पौधों में फूलों के गुच्छे सफेद और मुरझाए हुए दिख सकते हैं।
- ❖ **जड़ सड़न/गलन:** बहुत अधिक नमी व जल भराव की स्थिति में जड़ें सड़-गल सकती हैं, जिससे पत्तियां फिर से पीली पड़ सकती हैं।
- ❖ **अंगों का छोटा होना:** पौधों में नमी की कमी होने की स्थिति में तनों की संख्या कम रह सकती है और वे छोटे/बौने हो सकते हैं।
- ❖ **पोषक तत्वों का कम अवशोषण:** बहुत अधिक नमी व जल भराव की स्थिति में जड़ क्षतिग्रस्त होने के कारण पोषक तत्वों का अवशोषण को भी प्रभावित कर सकता है, जिससे पौधों में पोषक तत्वों की कमी से वे मुरझा हुआ दिख सकते हैं।

नमी तनाव की गंभीरता से पौधों में लक्षण

- ❖ **वृद्धि दर में कमी:** पौधे की समग्र वृद्धि और विकास रुक जाती है या धीमी गति हो जाती है, जिससे पौधे छोटे और कमजोर हो जाते हैं।
- ❖ **समय से पहले फूल गिरना और फल न लगना:** नमी की गंभीर कमी होने पर पौधे फूलों और छोटे फलों को गिरा देते हैं, ताकि वे अपने जीवन को बचा सके।
- ❖ **जड़ों का विकास प्रभावित होना:** हालांकि, जड़े नमी की तलाश में बढ़ती हैं, लेकिन गंभीर सुखे की स्थिति में जड़ों की सामान्य कार्य प्रणाली और पोषक तत्वों का अवशोषण प्रभावित होता है।

❖ **पत्ती का रंग हल्का होना:** पत्तियों का रंग सामान्य गहरे हरे रंग की तुलना में हलके हरे दिखाई पड़ते हैं।

❖ **पत्तियों पर धब्बे पड़ना:** कुछ मामलों में उत्तक के मृत या रंगहीन क्षेत्र पत्तियों पर धब्बों के रूप में दिखाई दे सकते हैं।

इस प्रकार के उपरोक्त वर्णित ये लक्षण पौधों के प्रकार, नमी तनाव की गंभीरता और अवधि के आधार पर भिन्न-भिन्न हो सकते हैं।

पौधों में नमी तनाव की विशेषताएँ

पौधों में नमी तनाव के मुख्य विशेषताओं में रन्ध्रों का बंद होना, पत्तियों का सिकुड़ना या झड़ना और प्रकाश-संश्लेषण में कमी शामिल हैं। अन्य विशेषताओं में विकास की धीमी गति हार्मोनल असंतुलन, पोषक तत्वों के अवशोषण में कमी और मुरझाना शामिल है, जो पौधों के सभी पहलुओं जैसे कि वृद्धि, उपज, चयापचय इत्यादि को प्रभावित करते हैं।

शारीरिक और संरचनात्मक विशेषताएँ

- ❖ **रन्ध्रों का बंद होना:** नमी की हानि को रोकने के लिए पौधे अपने रन्ध्र (छिद्र) को बंद कर लेते हैं।
- ❖ **पत्तियों का सिकुड़ना या झड़ना:** पत्तियों का क्षेत्रफल कम हो जाता है जिससे पानी का वाष्पोत्सर्जन दर कम होता है।
- ❖ **पत्तियों का रंग बदलना:** अत्यधिक गर्मी में पत्तियों का रंग बदल सकती है।
- ❖ **विकास में मंदी:** कोशिका का विकास धीमा हो जाता है, जिससे पौधों की वृद्धि रुक जाती है।
- ❖ **गहरी जड़ें:** कुछ पौधे नमी/पानी की तलाश में गहरी जड़ प्रणाली को विकसित करते हैं।

चयापचय और हार्मोनल विशेषताएँ

- ❖ **प्रकाश-संश्लेषण में कमी:** रन्ध्रों के बंद होने और अन्य शारीरिक परिवर्तनों के कारण प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया कम हो जाती है।
- ❖ **श्वसन दर में बदलाव:** नमी तनाव की गंभीरता के कारण श्वसन दर में वृद्धि या कमी हो सकती है।
- ❖ **पोषक तत्वों का अवशोषण कम होना:** नमी की कमी पोषक तत्वों के अवशोषण को प्रभावित करती है।
- ❖ **हार्मोनल असंतुलन:** नमी तनाव के प्रति प्रतिक्रिया के रूप में पौधों के हार्मोनल संतुलन में बदलाव होता है।

उपज और प्रजनन प्रभाव

- ❖ **फूलों और फलों का झड़ना:** नमी का तनाव फूलों और फलों को झड़ने का कारण बन सकता है।



❖ **उत्पादकता में कमी:** नमी के तनाव का सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव उत्पादन और गुणवत्ता में कमी है।

पौधों में नमी तनाव के प्रमुख कारक

पौधे में नमी तनाव के लिए कई कारक जिम्मेदार होते हैं। यह तनाव तब उत्पन्न होता है, जब मिट्टी में उपलब्ध जल पौधों की आवश्यकता को पूरा करने के लिए अपर्याप्त होता है। नमी तनाव के लिए जिम्मेदार मुख्य पर्यावरणीय और कृषि-संबंधी कारक निम्न उल्लेखित हैं:

- **वर्षा की कमी:** अनियमित मानसून, कम वर्षा या वर्षा के वितरण में कमी सुखे की स्थिति पैदा करती है जो नमी तनाव का सबसे बड़ा कारक है।
- **उच्च वाष्पोत्सर्जन:** उच्च तापमान, तेज हवाएँ, कम वायुमंडलीय आर्द्रता के कारण पौधे से और मिट्टी से पानी का वाष्पीकरण बढ़ जाता है, जिससे पौधों के साथ-साथ मिट्टी में नमी की कमी हो जाती है। परिणामतः पौधे नमी तनाव का सामना करते हैं।
- **मृदा की कम जल धारण क्षमता:** कुछ प्रकार की मिट्टी (जैसे रेतीली मिट्टी) पानी को रोककर रखने की क्षमता कम होती है, जिससे पौधों को जल्दी नमी की कमी का सामना करना पड़ता है।
- **अपर्याप्त जल संसाधन और सिंचाई:** जल संसाधनों का अपर्याप्त प्रबंधन और असंतुलित सिंचाई प्रणाली भी नमी तनाव का कारण बनती है।
- **अनुचित कृषि प्रबंधन:** फसल-चक्र का पालन न करना या ऐसी फसलों को उगाना जिन्हें उस क्षेत्र के जल स्तर से अधिक पानी की आवश्यकता होती है, नमी तनाव को बढ़ा सकता है।
- **अन्य अजैविक तनाव:** उच्च तापमान और लवणता जैसे अन्य अजैविक तनाव अक्सर नमी तनाव के साथ मिलकर स्थिति को और गंभीर बना देते हैं।

पौधों में नमी तनाव की सहनशीलता और बचाव के तंत्र

पौधे नमी तनाव का मुकाबला करने के लिए निम्न उल्लेखित रणनीतियाँ अपनाते हैं:

- ✓ **बचाव:** छोटे जीवन-चक्र, पत्तियों के क्षेत्रफल को कम करना, मोलायनपन बढ़ाना, गहरी जड़े विकसित करना और जड़ से प्ररोह अनुपात को बढ़ाना शामिल है।
- ✓ **सहनशीलता:** नमी की कमी में स्फीत (टंगर) बनाए रखने के लिए ऑस्मोलाइड्स (विलायक/संद्रता) का संचय, एंटी-ऑक्सीडेंट उत्पादन और हार्मोन का समायोजन जैसे शारीरिक तंत्र का उपयोग करना शामिल है।

नमी तनाव से पौधों की प्रतिक्रियाएँ

नमी तनाव का पौधों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है, जिससे बीज के अंकुरण में कमी, धीमी वृद्धि एवं विकास, पत्तियों का मुरझाना, फूल और फल गिरना एवं उत्पादन के साथ-साथ गुणवत्ता में गिरावट आ सकती है। यह तनाव पौधों के प्रकाश-संश्लेषण, श्वसन, उपापचयी क्रियाओं और पोषक तत्वों के अवशोषण जैसी कई प्रतिक्रियाओं को बाधित करता है। नमी का तनाव पौधों के जल संबंधों को भी प्रभावित करता है जिससे स्फीत दाब (टंगर दबाव) कम होता है और पत्तियों मुरझा जाती है। ये तनाव की प्रतिक्रियाएँ निम्न उल्लेखित हैं:

- 🌳 **बीज अंकुरण:** नमी तनाव से बीज अंकुरण और पौधे की वृद्धि धीमी हो जाती है, जिससे पौधों का विकास रूक जाता है।
- 🌳 **पत्तियाँ और तने:** रंध्र (छिद्र) बंद होने के कारण पत्तियाँ मुरझा कर झुलस सकती हैं। गंभीर नमी तनाव की स्थिति में प्ररोह की वृद्धि रूक जाती है, जिससे पौधे की उचाई कम हो जाती है।
- 🌳 **फूल और फल:** नमी की कमी के कारण फूल और फल गिर सकते हैं, जिससे उत्पादन और गुणवत्ता दोनों में भारी गिरावट आती है।
- 🌳 **प्रकाश-संश्लेषण और उपापचय:** नमी का तनाव प्रकाश संश्लेषण और उपापचय क्रियाओं को कम कर देता है।
- 🌳 **पोषक तत्वों का अवशोषण:** मिट्टी में नमी के कमी के कारण पौधे पोषक तत्वों का अवशोषण ठीक ढंग से नहीं कर पाते हैं, जिससे पौधों की वृद्धि और विकास अवरूद्ध हो जाती है।
- 🌳 **जड़ों का विकास:** मध्यम सुखे की स्थिति में जड़े प्ररोह की तुलना में तेजी से बढ़ सकती हैं, जिससे जड़ : प्ररोह का अनुपात बढ़ जाता है।
- 🌳 **पौधों की वृद्धि और विकास:** गंभीर और लंबे समय तक नमी तनाव के कारण पौधों की मृत्यु हो सकती है।

पौधों की विशेष प्रतिक्रियाएँ और अनुकूलन

- 🌳 **नमी तनाव से बचाव:** कुछ पौधे अपने छोटे जीवन-चक्र के माध्यम से पत्तियों का क्षेत्रफल कम करके, मुलायनपन बढ़ाकर और रंध्रों को नियंत्रित करके नमी तनाव से बचते हैं।
- 🌳 **तनाव सहनशीलता:** कुछ पौधे अपनी गहरी जड़े विकसित करके या ऑस्मोटिक (परासरणी) समायोजन के द्वारा नमी तनाव सहन करने की क्षमता विकसित करते हैं।
- 🌳 **हार्मोनल और आणविक प्रतिक्रियाएँ:** पौधे नमी तनाव से बचाव के लिए विभिन्न हार्मोनल और एंजाइम छोड़ते हैं, जिससे कोशिका



की वृद्धि एवं विकास को बढ़ावा मिलता है और एथिलीन हानिकारक प्रभावों को कम करता है।

सुखा-सहिष्णु प्रजातियां/किस्में: जैव प्रौद्योगिकी का उपयोग करके सुखे के प्रति सहनशील पौधों को विकसित किये जा सकते हैं।

पौधों में नमी तनाव प्रबंधन का कार्यान्वयन

पौधों में नमी तनाव प्रबंधन के लिए आधुनिक सिंचाई पद्धति जैसे ड्रिप और स्प्रिंकलर सिंचाई प्रणाली का उपयोग, मिट्टी की नमी बनाये रखने के लिए मलच (पलबार) से ढकना और नमी तनाव प्रतिरोधी पौधों की प्रजातियां/नमी तनाव सहनशील किस्मों का चयन महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त आवश्यकतानुसार ही सिंचाई-जल का व्यवहार करना, पौधों के परिपक्वता अवस्था में सिंचाई की मात्रा संतुलित करना और सिंचाई जल की बचत वाली तकनीकों को अपनाना महत्वपूर्ण है।

कुशल एवं प्रभावी सिंचाई प्रणाली

- ✓ **ड्रिप सिंचाई प्रणाली:** यह सबसे प्रभावी तकनीक है जो सीधे पौधों के जड़ क्षेत्र में पानी और पोषक तत्वों को पहुँचाता है, जिससे पानी और उर्वरक दोनों की बर्बादी कम होती है और अच्छी गुणवत्ता के साथ उपज बढ़ती है। यह सिंचाई प्रणाली फलों और सब्जियों के लिए अत्यन्त उपयोगी है।
- ✓ **स्प्रिंकलर सिंचाई प्रणाली:** यह प्रणाली भी नमी की दक्षता बढ़ाने वाली एक प्रभावी तकनीक है, जो सूक्ष्म सिंचाई पद्धति के अंतर्गत आता है।
- ✓ **मलच का उपयोग:** मिट्टी की नमी बनाये रखने के लिए कार्बनिक मलच (पुआल, भूसा, घास की कतरने, फसल अवशेष) और अकार्बनिक मलच (पोलीथीन आदि) का उपयोग करना सर्वोत्तम उपाय है। इस प्रकार मलचिंग करने से मिट्टी की नमी बनी रहती है और वाष्पीकरण कम होता है। साथ ही खरपतवार भी कम उगते हैं।
- ✓ **सही समय पर सिंचाई:** सिंचाई के समय का अंतराल पर ध्यान रखना।
- ✓ **नमी की निगरानी:** समय-समय पर क्रमानुसार फसलों में नमी की निगरानी करते रहना चाहिए।
- ✓ पौधों की वृद्धि के विभिन्न चरणों के अनुसार पानी की सही मात्रा और समय का ध्यान रखना चाहिए।

- ✓ फसल की वृद्धि के विभिन्न चरणों के अनुसार सिंचाई जल की मात्रा को समायोजित करना चाहिए।
- ✓ फलों व सब्जियों का स्वाद बेहतर बनाने के लिए, कटाई से पहले सिंचाई जल की मात्रा को कम अथवा संतुलित कर देना चाहिए।
- ✓ नर्सरी में शाम के समय सिंचाई करना चाहिए।
- ✓ **सुखा सहिष्णु किस्मों का चयन:** गुणवत्तायुक्त अधिक पैदावार सुनिश्चित करने के लिए विभिन्न फसलों के सुखा सहिष्णु किस्मों/प्रजातियों का चयन सुनिश्चित करना चाहिए।

अतिरिक्त उपाय

- ✓ प्रतिकूल पर्यावरणीय परिस्थितियों के समय फसलों को बचाने के लिए अन्य उपायों को सम्मिलित करना चाहिए।
- ✓ स्वस्थ फसल उत्पादन के लिए सिंचाई जल के गुणवत्ता की जाँच करना चाहिए। लवणीय या क्षारीय पानी पौधों के अवशोषण में दिक्कत आ सकती है।
- ✓ **पौध वृद्धि नियामक का उपयोग:** पौधों में नमी तनाव को कम करने में पौध वृद्धि नियामक का भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है।
- ✓ **पोषक तत्वों का पर्णीय छिड़काव:** फसलों में पोषक तत्वों का पर्णीय छिड़काव भी नमी तनाव को कम करने में सहायता करता है।

निष्कर्ष

नमी का तनाव फसलों के उत्पादन पर गंभीर नाकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इस समस्या से निजात पाने अथवा कम करने के लिए कुशल सिंचाई पद्धति (ड्रिप और स्प्रिंकलर सिंचाई प्रणाली) के उपयोग के साथ नमी की नियमित निगरानी, मिट्टी में नमी को बनाये रखने के लिए कार्बनिक मलच (पुआल, घास की कतरने, भूसा, फसल-अवशेष इत्यादि) और अकार्बनिक मलच (प्लास्टिक मलच) का प्रयोग, मिट्टी को रंध्रयुक्त बनाये रखने के लिए जैविक खाद (कम्पोस्ट, वर्मीकम्पोस्ट, खली आदि) का व्यवहार, ताकि मिट्टी में नमी का संरक्षण हो सके। अंतः फसलों की उन्नत प्रबंधन तकनीकों का उपयोग के साथ-साथ नमी तनाव के प्रति फसलों की सहनशील किस्मों का प्रयोग स्वस्थ फसल के साथ अच्छी गुणवत्तायुक्त अधिक उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं।





करौंदा की खेती एवं प्रबंधन: किसानों के लिए एक लाभकारी विकल्प

सौरभ सिंह- शोध छात्र, डॉ. कुलदीप पाण्डेय- सहायक प्राध्यापक

फल विज्ञान विभाग, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कुमारगंज, अयोध्या, उत्तर प्रदेश

शिवाली वर्मा- शोध छात्र, वेदान्त सिंह- शोध छात्र

फल विज्ञान विभाग, चन्द्र शेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर, उत्तर प्रदेश

अमन कुमार- शोध छात्र

फल विज्ञान विभाग, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कुमारगंज, अयोध्या, उत्तर प्रदेश

कैरिसा कैरेंडस एल. (*Carissa carandas* L.) जिसे आमतौर पर करौंदा के नाम से जाना जाता है, जो कि एपोसाइनेसी (Apocynaceae) कुल से संबंधित है और इसकी खेती मुख्य रूप से भारतीय उपमहाद्वीप के शुष्क और अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में की जाती है। भारत में करौंदे की खेती प्रमुख रूप से बिहार, पश्चिम बंगाल, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान, गुजरात, उत्तर प्रदेश और झारखंड में की जाती है।

पौधे की विशेषताएं

करौंदा एक कठोर, कांटेदार एवं झाड़ीनुमा फलदार पौधा होता है। इसकी ऊंचाई सामान्यतः 6.7 फीट होती है तथा पत्तियों के पास मजबूत काँटे पाए जाते हैं। इसके फूल छोटे, सुगंधित, उभयलिंगी एवं सफेद रंग के होते हैं, जिनमें हल्की गुलाबी या पीली आभा होती है और ये जनवरी से फरवरी के मध्य में खिलते हैं। करौंदे के फल छोटे, गोल, हरे या लाल रंग के होते हैं, जो पकने पर काले हो जाते हैं। कच्चे फल को काटने पर दूधिया रस निकलता है। यह पौधा सूखा के प्रति सहनशील है तथा 5.0.8.0 पीएच मान वाली विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में उगाया जा सकता है, परंतु जलभराव की स्थिति हेतु सहिष्णु है। वर्षा ऋतु के बाद

जुलाई से सितंबर के बीच इसके फल पकते हैं, जिनका उपयोग विभिन्न उत्पाद जैसे, अचार, आर. टी. एस., स्कवैश इत्यादि के बनाने में किया जाता है। जिससे यह घरेलू एवं व्यावसायिक उपयोग के लिए एक उपयोगी फल फसल सिद्ध होती है।

पोषण का महत्व

करौंदा एक पौष्टिक फल है और इसमें पर्याप्त मात्रा में विटामिन सी के साथ आयरन की मात्रा भरपूर होती है। यह एनीमिया (खून की



कमी) को ठीक करने के लिए उपयोगी है और इसमें एंटीस्कोरब्यूटिक गुण होते हैं। करौंदे के फलों का उपयोग उनके चिकित्सीय गुणों के लिए कई आयुर्वेदिक औषधियों को तैयार करने तैयारियों में किया जाता है। जैसे की सीने में दर्द की समस्या का इलाज जड़ के अर्क से किया जाता है। इसकी पत्तियों के अर्क का उपयोग बुखार के इलाज में किया जाता है। इसके अलावा फल में फोलेट, पाइरिडोक्सिन, बायोटिन, पैंटोथेनिक एसिड, थायमिन और राइबोफ्लेविन इत्यादि प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं।

तालिका 01: करौंदा के फलों का पोषण मूल्य

पोषक तत्व	फ्रेश वैल्यू (100 ग्राम)	ड्राइड वैल्यू (100 ग्राम)
एनर्जी (कैलोरी)	42	364
नमी	91	18.2
प्रोटीन	1.1	2.3
कार्बोहाइड्रेट	2.9	67.1
फैट	2.9	9.6
मिनरल	-	2.8
कैल्शियम (मि.ग्रा.)	2.1	160
फॉस्फोरस (मि.ग्रा.)	28	60
आयरन (मि.ग्रा.)	-	39
विटामिन सी (मि.ग्रा.)	200	500

महत्व एवं उपयोग

यह सदा हरा रहने वाला झाड़ीनुमा पौधा है। इसका मुख्य उपयोग खेत की सीमा पर जैविक बाड़ के रूप में किया जा सकता है, जहाँ इसकी आयुकाल ३० वर्षों तक होती है। इससे ऐसी दीवार बनाई जा सकती है जिससे कि आवारा जानवर प्रवेश न कर पाएँ .हालाँकि, शुरुआत में, इसको गाय और बकरियों के द्वारा नुकसान पहुँचाया जाता था और इसलिए इसे काटेदार तार के साथ लगाने का विचार किया गया है।

वैल्यू एडेड प्रोडक्ट

करौंदे का उपयोग मुख्य रूप से औद्योगिक पैमाने पर अचार,



जेली, जैम, स्कवैश, सिरप और चटनी तैयार करने के लिए किया जाता है। पके और कच्चे फलों को काटकर चटनी, अचार और कैन्डी बनाई जा सकती है, कच्चे फलों का रस निकालकर स्कवैश, आर. टी. एस. और नेक्टर जैसे पेय पदार्थ बनाए जाते हैं। करौंदा जैम एक उत्तम मूल्य संवर्धन उत्पाद है जिसमें बेहतर पोषण मूल्य और लंबी शेल्फ लाइफ है। आज बाजार में करौंदा की रेडी-टू-यूज रेसिपी और पाउडर उपलब्ध हैं और इनका उपयोग स्वाद बढ़ाने के लिए किया जा सकता है।

पौध रोपण

करौंदा को शुद्ध फसल के रूप में या कृषि वानिकी प्रणाली में, या तो सीधी बुआई द्वारा या नर्सरी बेड में वानस्पतिक रूप से प्रचारित पौधों को लगाकर उगाया जाता है। जुलाई-अगस्त के दौरान नये वृक्षारोपण किये जाते हैं। प्रत्येक पौधे के लिए 30 सेमी × 30 सेमी का गड्ढा तैयार किया जाता है। अनुशंसित रोपण दूरी सामान्य परिस्थितियों में 2 मीटर × 2 मीटर, सीमांत परिस्थितियों में 1 मीटर × 1 मीटर और झाड़ीदार पंक्ति वृक्षारोपण के लिए 0.5 मीटर × 0.5 मीटर है। रोपण आदर्श रूप से मानसून के दौरान किया जाना चाहिए, विशेष रूप से शुष्क क्षेत्रों में, जिससे पौधों कि जड़ें अच्छी तरह से विकसित हो जाती है और बार-बार पानी देने की आवश्यकता कम हो जाती है।

तालिका 02: करौंदे की महत्वपूर्ण किस्में

विशेषताएँ	पंत मनोहर	पंत सुदर्शन	पंत सुवर्णा	कोंकण बोलड	सी.एच.ई.एस. के-वी-6	सी.एच.ई.एस. के-वी-7	मरू गौरव
विकसित संस्थान	जी.बी. पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय पंतनगर (उत्तराखंड)			डॉ. बी.एस.के.के.वी., दापोली (महाराष्ट्र)	सी.एच.ई.एस. चेट्टल्ली (कर्नाटक)		केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान जोधपुर (राजस्थान)



पौधे का प्रकार	मध्यम आकार की सघन झाड़ी	मध्यम आकार की सघन झाड़ी	सीधा बढ़ने वाला एवं विरल	मध्यम आकार का एवं सशक्त	फैलावदार	फैलावदार	फैलावदार, सशक्त तथा घनी छत्री
फल का रंग	सफेद पृष्ठभूमि पर गहरा गुलाबी पकने पर गहरा भूरा	सफेद पृष्ठभूमि पर गुलाबी पकने पर गहरा भूरा	हरी पृष्ठभूमि पर गहरी भूरीय पकने पर गहरा भूरा	गहरा बैंगनी-लाल	गहरा काला-लाल	गहरा काला-लाल	गहरा काला-लाल
फल का आकार	छोटा	छोटा	छोटा	बड़ा	मध्यम	मध्यम	छोटा
फल भार (ग्राम)	3.49	3.46	3.62	16.23	13.15	12.13	3.47
टी.एस.एस. (°ब्रिक्स)	3.92	3.5	3.83	10.12	16.0	15.0	9.4
अम्लता	1.82	1.82	2.30	-	1.8	1.07	2.80
गूदा प्राप्ति	88.27	88.47	88.27	92.0	90.0	91.0	88.50
उपज (किग्रा/पौधा)	27.0	29.0	22.0	35.0	15.27	21.8	40.0

सिंचाई

करौंदे का पौधा धीरे-धीरे बढ़ता है, लेकिन एक बार जब यह मिट्टी में स्थापित हो जाता है और उचित विकास हासिल कर लेता है, तो इसे नियमित रूप से पानी देने की आवश्यकता नहीं होती है। यदि वर्षा न हो तो फल विकास के दौरान एक सिंचाई आवश्यक है। शुष्क क्षेत्रों में, पौधे की उचित वृद्धि और विकास सुनिश्चित करने के लिए बरसात और मानसून के बाद की अवधि के दौरान जड़ क्षेत्र के पास पानी एकत्र किया जाना चाहिए, जिससे पौधे को लम्बे समय तक जल कि उपलब्धता सुनिश्चित की जा सके।

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन

मानसून की शुरुआत में अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद 10 किलोग्राम प्रति पौधा शुष्क क्षेत्रों में उपयोगी होती है। वृद्धि और उपज में सुधार के लिए, आपको प्रति वर्ष प्रति पौधा 50,100 और 150 ग्राम नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटेशियम का उपयोग करना चाहिए।

कैनोपी प्रबंधन

करौंदा को एक या दो-तने वाली विधि का उपयोग करके सधाई की जाती है। रोगग्रस्त, कीट-संक्रमित और मृत शाखाओं की नियमित रूप से छंटाई करनी चाहिए। वांछित आकार और साफ तने को बनाए रखने के लिए, युवा पौधों को अवांछित शाखाओं को आवश्यकतानुसार काट देना चाहिए।

रोग और कीट

एन्थ्रेक्नोज

करौंदे के पौधे एन्थ्रेक्नोज के प्रति संवेदनशील होते हैं, जो पत्तियों पर काले, भूरे और धारीदार धारों के रूप में प्रकट होता है। यह रोग फलों और शाखाओं को भी प्रभावित करता है। प्रारंभिक अवस्था में कॉपर युक्त फफूंदनाशी, जैसे कॉपर ऑक्साइड या कॉपर ट्राइऑक्साइड का छिड़काव करके इसे नियंत्रित किया जा सकता है। संक्रमित पत्तियों और फलों को हटाने और जलाने सहित बगीचे की अच्छी स्वच्छता बनाए रखने से संक्रमण को कम करने में मदद मिल सकती है।



लीफ कैटरपिलर

इल्लियां पत्तियां खाकर काफी नुकसान पहुंचाती हैं। इससे पौधे की वृद्धि प्रभावित होती है। कीटनाशकों, जैविक नियंत्रण और पारंपरिक तरीकों का उपयोग करके कृमि का प्रबंधन किया जा सकता है। पत्ती खाने वाले लार्वा को नियंत्रित करने के लिए रासायनिक मोनोक्रोटोफॉस (2 मि.ली.लीटर) का उपयोग किया जा सकता है।

फ्रूट फ्लाई

फल मक्खियाँ पके फलों को संक्रमित करती हैं, मादा अपने ओविपोसिटर का उपयोग करके फलों पर अंडे देती है। अंडे सेने के बाद, लार्वा गूदे को खाते हैं, जिससे संक्रमित फल सड़ जाता है और गिर जाता है। इसके परिणामस्वरूप अंडे देने वाली जगह के आसपास भूरे रंग का धब्बा बन जाता है। कटाई से पहले एकीकृत कीट प्रबंधन (आई.पी.एम.) प्रथाएं, जैसे कि गिरे हुए या संक्रमित फलों को इकट्ठा करना और नष्ट करना, संक्रमण को नियंत्रित करने में मदद कर सकता है। इसके अतिरिक्त, चारा स्प्रे के साथ प्रति एकड़ 4-6 मिथाइल यूजेनॉल ट्रैप लगाना भी प्रभावी हो सकता है। कीट नियंत्रण के लिए 1 लीटर पानी में 2 मिलीलीटर डेसीस और 100 ग्राम चाय मिलाकर डेकामेट्रिन का घोल तैयार किया जा सकता है।

तुड़ाई प्रबंधन

फल लगने के 100-110 दिन बाद फल कटाई के लिए तैयार हो जाते हैं। फूल मार्च में शुरू होते हैं, और फल जुलाई और सितंबर के बीच पकते हैं, कच्चे फल मई से उपलब्ध होते हैं। रंग परिवर्तन और 1.0 से ऊपर विशिष्ट गुरुत्व फल की परिपक्वता के अच्छे संकेतक हैं। आमतौर पर, प्रति पौधा 4-5 किलोग्राम फल की पूरी उपज प्राप्त करने के लिए दो से तीन तुड़ाई की आवश्यकता होती है। इष्टतम परिस्थितियों में, एक परिपक्व पेड़ प्रति वर्ष 10-12 किलोग्राम फल पैदा कर सकता है।

मार्केटिंग

ताजा उपज सीधे बाजारों में बेची जा सकती है, जिसकी कीमतें ₹30 से ₹60 प्रति किलोग्राम तक होती हैं। आदिवासी क्षेत्रों में, लोग अपने उत्पाद शहर और आस-पास के बाजारों में बेचते हैं, अक्सर राजमार्गों के किनारे अस्थायी दुकानें लगाते हैं, और बांस की टोकरियों में अपना सामान प्रदर्शित करते हैं। हाल ही में, कुछ क्रांतिकारी उद्योगों के उदय से स्थानीय समुदायों की आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है। ये उद्योग ग्रामीणों से उत्पाद प्राप्त करते हैं और उन्हें स्थानीय बाजारों की तुलना में अधिक कीमतों पर बेचते हैं। कृषि विज्ञान केंद्रों, गैर सरकारी संगठनों और स्वयं सहायता समूहों की भागीदारी से इन उत्पादों की लोकप्रियता बढ़ सकती है, उनका मूल्य बढ़ सकता है और बाजार पहुंच में सुधार हो सकता है। इसके अतिरिक्त, वे दूरदराज के क्षेत्रों में शैक्षिक सहायता प्रदान करते हैं, जिससे इन समुदायों के समग्र विकास में योगदान मिलता है।

निष्कर्ष

करौंदा की खेती भविष्य में किसानों के लिए एक महत्वपूर्ण और लाभदायक फसल बन सकती है। यह फसल शुष्क एवं अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में भी आसानी से उगाई जा सकती है और कम लागत में अच्छी उपज देती है। इसके पोषक एवं औषधीय गुणों के कारण इसकी मांग धीरे-धीरे बढ़ रही है। करौंदा से अचार, जैम, जेली, स्क्वैश और अन्य प्रसंस्कृत उत्पाद तैयार किए जा सकते हैं, जिससे मूल्य संवर्धन के माध्यम से किसानों की आय में वृद्धि हो सकती है। प्रसंस्करण उद्योग, बेहतर विपणन व्यवस्था और सरकारी योजनाओं के सहयोग से करौंदा की खेती का विस्तार किया जा सकता है। इस प्रकार, करौंदा की खेती ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर बढ़ाने और किसानों की आर्थिक स्थिति मजबूत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।





कृषि प्रबंधन में ड्रोन का महत्व



1



2



3



4

1. माजिद खान- छात्र, बी.एससी. (ऑनर्स) कृषि, कृषि संकाय, सरदार पटेल विश्वविद्यालय, डोंगरिया, बालाघाट
2. डॉ. नीरज नाथ परिहार एवं 3. डॉ. मोहम्मद वामिक- सहायक प्राध्यापक, सरदार पटेल विश्वविद्यालय, डोंगरिया, बालाघाट
4. श्री अवधेश सिंह चौधरी- विभागाध्यक्ष, कृषि संकाय, सरदार पटेल विश्वविद्यालय, डोंगरिया, बालाघाट

भारत जैसे कृषि प्रधान देश में कृषि केवल आजीविका का साधन नहीं, बल्कि अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। देश की बड़ी आबादी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है। वर्तमान समय में कृषि क्षेत्र अनेक चुनौतियों का सामना कर रहा है, जैसे भूमि का खंडित होना, जल संसाधनों की कमी, बढ़ती उत्पादन लागत, जलवायु परिवर्तन, कीट एवं रोगों का प्रकोप तथा श्रमिकों की कमी। इन समस्याओं के समाधान के लिए पारंपरिक खेती पद्धतियों के साथ-साथ आधुनिक तकनीकों को अपनाना अत्यंत आवश्यक हो गया है। इक्कीसवीं सदी में तकनीकी विकास ने कृषि क्षेत्र को भी नई दिशा प्रदान की है। सूचना एवं संचार तकनीक, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, उपग्रह चित्रण तथा सेंसर आधारित उपकरणों के साथ अब ड्रोन तकनीक भी कृषि प्रबंधन का महत्वपूर्ण हिस्सा बन चुकी है। ड्रोन, जिन्हें मानव रहित विमान कहा जाता है, खेतों के ऊपर उड़कर त्वरित एवं सटीक आंकड़े एकत्रित करने में सक्षम होते हैं। इनसे प्राप्त चित्रों और डेटा के आधार पर किसान फसल की स्थिति का वैज्ञानिक विश्लेषण कर सकते हैं। ड्रोन तकनीक ने कृषि प्रबंधन को अधिक सटीक समयबद्ध और क्रिफायती बना दिया है। जहां पहले फसल की निगरानी और छिड़काव के लिए अधिक श्रम और समय की आवश्यकता होती थी, वहीं अब यह कार्य कम समय में और अधिक प्रभावी ढंग से संभव हो गया है। इसके अतिरिक्त, यह तकनीक पर्यावरण संरक्षण और

सतत कृषि विकास की दिशा में भी महत्वपूर्ण योगदान दे रही है। इस प्रकार, आधुनिक कृषि प्रबंधन में ड्रोन का उपयोग एक नवाचार के रूप में उभरकर सामने आया है, जो खेती को पारंपरिक पद्धतियों से आगे बढ़ाकर वैज्ञानिक एवं तकनीकी आधार प्रदान कर रहा है।

कृषि प्रबंधन में ड्रोन की भूमिका

कृषि प्रबंधन में ड्रोन की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण एवं बहुआयामी है। यह तकनीक खेती को अधिक वैज्ञानिक, सटीक और प्रभावी बनाने में सहायता करती है। ड्रोन के माध्यम से किसान कम समय में बड़े क्षेत्र की निगरानी कर सकते हैं तथा आवश्यक निर्णय शीघ्रता से ले सकते हैं। इसकी प्रमुख भूमिकाएँ निम्नलिखित हैं:

- ❖ **फसल स्वास्थ्य की निगरानी:** ड्रोन में लगे हाई-रिजॉल्यूशन कैमरे और मल्टीस्पेक्ट्रल सेंसर फसल की वास्तविक स्थिति का आकलन करते हैं। इनसे फसल की वृद्धि, पत्तियों का रंग, रोग या कीट प्रकोप तथा पोषक तत्वों की कमी का प्रारंभिक चरण में ही पता चल जाता है। इससे समय रहते उचित उपचार संभव होता है और उत्पादन हानि कम होती है।
- ❖ **सटीक छिड़काव:** ड्रोन के माध्यम से कीटनाशक, उर्वरक एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों का नियंत्रित एवं समान वितरण किया जा सकता है। यह विधि पारंपरिक छिड़काव की तुलना में अधिक सुरक्षित और



प्रभावी होती है। इससे रसायनों की बचत होती है, श्रम लागत कम होती है तथा किसान सीधे संपर्क से होने वाले स्वास्थ्य जोखिमों से भी बचते हैं।

- ❖ **मृदा एवं जल प्रबंधन:** ड्रोन द्वारा एकत्रित आंकड़ों से खेत की नमी की स्थिति, जलभराव वाले क्षेत्र तथा सूखे क्षेत्रों की पहचान की जा सकती है। इससे सिंचाई प्रबंधन बेहतर ढंग से किया जा सकता है। परिणामस्वरूप जल की बचत होती है और फसल को आवश्यक मात्रा में ही पानी उपलब्ध कराया जाता है।
- ❖ **बीज एवं रोपण प्रबंधन:** कुछ आधुनिक ड्रोन बीजों का प्रसार भी कर सकते हैं, जिससे कठिन एवं दुर्गम क्षेत्रों में भी बुवाई संभव हो जाती है। इससे समय की बचत होती है और समान दूरी पर बीज वितरण सुनिश्चित होता है।
- ❖ **फसल उत्पादन का अनुमान:** ड्रोन द्वारा एकत्रित डेटा के आधार पर फसल उत्पादन का पूर्वानुमान लगाया जा सकता है। इससे किसान बाजार योजना, भंडारण एवं बिक्री रणनीति पहले से तैयार कर सकते हैं।
- ❖ **आपदा एवं क्षति आकलन:** बाढ़, सूखा, ओलावृष्टि या कीट प्रकोप के बाद ड्रोन के माध्यम से नुकसान का सटीक आकलन किया जा सकता है। इससे बीमा दावा प्रक्रिया एवं राहत कार्य में पारदर्शिता और गति आती है।

कृषि प्रबंधन में ड्रोन के लाभ

कृषि प्रबंधन में ड्रोन तकनीक के उपयोग से किसानों को अनेक प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष लाभ प्राप्त होते हैं। यह तकनीक न केवल उत्पादन बढ़ाने में सहायक है, बल्कि संसाधनों के कुशल प्रबंधन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसके प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं

1. समय एवं श्रम की बचत

ड्रोन कम समय में बड़े क्षेत्र की निगरानी और छिड़काव कर सकते हैं। जहां पारंपरिक विधियों में कई श्रमिकों और अधिक समय की आवश्यकता होती है, वहीं ड्रोन कुछ ही घंटों में कार्य पूर्ण कर देते हैं। इससे श्रम लागत में कमी आती है।

2. उत्पादन में वृद्धि

फसल की नियमित और सटीक निगरानी से रोग, कीट एवं पोषक तत्वों की कमी का शीघ्र पता चल जाता है। समय पर उपचार से फसल की गुणवत्ता और उत्पादन दोनों में वृद्धि होती है।

3. रसायनों की बचत एवं संतुलित उपयोग

ड्रोन सटीक मात्रा में कीटनाशक और उर्वरक का छिड़काव करते हैं। इससे अनावश्यक रसायनों का उपयोग कम होता है, लागत घटती है और पर्यावरण पर नकारात्मक प्रभाव भी कम पड़ता है।

4. किसानों की सुरक्षा

पारंपरिक छिड़काव के दौरान किसान रसायनों के सीधे संपर्क में आते हैं, जिससे स्वास्थ्य संबंधी जोखिम बढ़ते हैं। ड्रोन के उपयोग से यह जोखिम काफी हद तक कम हो जाता है।

5. सटीक निर्णय लेने में सहायता

ड्रोन द्वारा प्राप्त आंकड़ों के आधार पर किसान वैज्ञानिक तरीके से निर्णय ले सकते हैं, जैसेकृकब सिंचाई करनी है, किस क्षेत्र में अधिक उर्वरक देना है या कहाँ रोग नियंत्रण की आवश्यकता है।

6. जल एवं संसाधन संरक्षण

ड्रोन तकनीक सटीक कृषि को बढ़ावा देती है, जिससे पानी, उर्वरक और अन्य संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग होता है। यह सतत कृषि विकास की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है।

7. आपदा के बाद त्वरित आकलन

प्राकृतिक आपदाओं के बाद ड्रोन से नुकसान का शीघ्र और सटीक मूल्यांकन संभव होता है। इससे बीमा दावा और सरकारी सहायता प्रक्रिया में पारदर्शिता आती है।

चुनौतियाँ

- ✓ प्रारंभिक लागत अधिक होना।
- ✓ तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता।
- ✓ छोटे किसानों के लिए पहुंच सीमित होना।

निष्कर्ष

कृषि प्रबंधन में ड्रोन तकनीक आधुनिक वैज्ञानिक प्रगति का एक सशक्त उदाहरण है, जिसने खेती की पारंपरिक पद्धतियों में नवाचार और दक्षता का समावेश किया है। आज जब कृषि क्षेत्र जलवायु परिवर्तन, संसाधनों की कमी, बढ़ती लागत और श्रमिक अभाव जैसी गंभीर चुनौतियों का सामना कर रहा है, तब ड्रोन तकनीक एक प्रभावी समाधान के रूप में उभरकर सामने आई है। यह तकनीक फसल स्वास्थ्य की निगरानी, सटीक छिड़काव, मृदा एवं जल प्रबंधन तथा उत्पादन अनुमान जैसे महत्वपूर्ण कार्यों को सरल, तेज और वैज्ञानिक बनाती है।

ड्रोन के माध्यम से कृषि कार्यों में पारदर्शिता, सटीकता और समयबद्धता आई है। इससे न केवल उत्पादन में वृद्धि होती है, बल्कि संसाधनों का संतुलित उपयोग भी सुनिश्चित होता है। रसायनों के नियंत्रित प्रयोग से पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा मिलता है और किसानों के स्वास्थ्य जोखिम भी कम होते हैं। इस प्रकार ड्रोन तकनीक सतत एवं स्मार्ट कृषि प्रणाली की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

यद्यपि इसकी उच्च प्रारंभिक लागत, तकनीकी प्रशिक्षण की आवश्यकता और कानूनी प्रक्रियाएँ कुछ हद तक चुनौतियाँ प्रस्तुत करती हैं, फिर भी सरकारी सहायता, सब्सिडी योजनाओं और जागरूकता कार्यक्रमों के माध्यम से इन बाधाओं को दूर किया जा सकता है। जैसे-जैसे तकनीक सुलभ और किफायती होती जाएगी, वैसे-वैसे इसका प्रसार भी व्यापक स्तर पर होगा। अंततः कहा जा सकता है कि कृषि प्रबंधन में ड्रोन का समावेश भविष्य की कृषि का आधार बन सकता है। यह तकनीक किसानों की आय वृद्धि, उत्पादन गुणवत्ता सुधार और पर्यावरण संरक्षणकृतीनों लक्ष्यों को एक साथ प्राप्त करने की क्षमता रखती है। अतः ड्रोन आधारित कृषि प्रणाली को अपनाना समय की आवश्यकता ही नहीं, बल्कि कृषि विकास की अनिवार्य दिशा है। ❖





चने की वैज्ञानिक खेती

सतभिषा नायक

पीएच.डी. शोधार्थी

सस्य विज्ञान विभाग, कृषि महाविद्यालय, इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर

भारत में उगाई जाने वाली दलहनी फसलों में चना सबसे पुरानी एवं महत्वपूर्ण फसल है। चने का उपयोग प्रायः दाल और रोटी के लिए किया जाता है। चने के बेसन से विभिन्न प्रकार के नमकीन एवं मिठाईयां तैयार की जाती है तथा हरी पत्तियों और दानों को सब्जी के रूप में भी प्रयोग किया जाता है। चने के दाने का प्रयोग जानवरों को खिलाने के लिए भी किया जाता है। चने की पत्तियों में मेलिक एसिड, आकजैलिक एसिड आदि की उपस्थिति के कारण इसका भूसा नमकीन होता है और जानवरों के द्वारा काफी पसंद किया जाता है। चने में 21-22 प्रतिशत प्रोटीन एवं 62 प्रतिशत कार्बोहाईड्रेट पाया जाता है। अन्य दलहन की तरह इसकी जड़ों में ग्रंथियां पाई जाती है जो वातावरण से नत्रजन इकट्ठा कर, मृदा की उर्वरता बढ़ाती है।

जलवायु

चना एक शुष्क एवं ठण्डे जलवायु की फसल है जिसे रबी मौसम में उगाया जाता है। चने की खेती के लिए मध्यम वर्षा (60-90 से.मी. वार्षिक वर्षा) और सर्दी वाले क्षेत्र सर्वाधिक उपयुक्त हैं। फसल में फूल आने के बाद वर्षा होना हानिकारक होता है, क्योंकि वर्षा के कारण फूल के परागण एक दूसरे से चिपक जाते हैं जिससे बीज नहीं बन पाते हैं। इसकी खेती के लिए 24-30° सेल्सियस तापमान उपयुक्त माना जाता है। फसल में दाना बनते समय 3° सेल्सियस से कम या 30° सेल्सियस से अधिक तापक्रम हानिकारक रहता है।

भूमि

चने की खेती दोमट भूमियों से लेकर मटियार भूमियों में सफलता पूर्वक की जा सकती है। चने की खेती हल्की भारी भूमियों में भी की जाती है। किन्तु अधिक जल धारण एवं उचित जल निकास वाली भूमि सर्वोत्तम रहती है। छत्तीसगढ़ की डोरसा, कन्हार भूमि इसकी खेती हेतु उपर्युक्त हैं। मृदा का पी.एच. मान 6-7.5 उपर्युक्त रहता है।

भूमि की तैयारी

अंसिचित अवस्था में मानसून शुरू होने से पूर्व गहरी जुताई करने से रबी फसल के लिए भी नमी संरक्षित होता है। एक जुताई मिट्टी पलटने वाले हल तथा 2 जुताई देशी हल से करने के उपरांत हल्का पाटा चलाकर खेत को अर्ध-समतल कर लिया जाता है। बुवाई के समय खेत में पर्याप्त मात्रा में नमी रहनी चाहिए।

बुवाई का समय

अधिक उपज प्राप्त करने के लिए 15 अक्टूबर से 30 नवंबर का समय उपर्युक्त होता है।

बीज दर

1. समय पर बोवाई के लिए 75-80 कि.ग्रा./हे.
2. देर से/उतेरा बोवाई के लिए 100 कि.ग्रा./हे.





बीजोपचार

1. रोग एवं कीटनाशी रसायनों से बीजोपचार:

बीज जनित रोगों से बचाव के लिए 2 ग्राम कार्बेन्डाजिम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करना चाहिए। जिन क्षेत्रों में दीमक का प्रकोप अधिक होता है, उन खेतों में 20 ई.सी. क्लोरपायरीफॉस के 0.2 प्रतिशत घोल से बीज को उपचारित करके बोना लाभप्रद होता है।

2. राइजोबियम कल्चर से बीजोपचार:

एक पैकेट (200 ग्राम) राइजोबियम कल्चर + 50 ग्राम गुड़ को आधा लीटर गर्म पानी में घोल बनाकर प्रति 10 कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित कर छायादार स्थान में रखे तत्पश्चात् बुवाई करें। ध्यान रहे कि राजोबियम से उपचारित करने के बाद बीज को कवकनाशी/कीटनाशी से उपचारित न करें।

3. पी.एस.बी. व ट्राइकोडर्मा कल्चर से बीजोपचार:

बीजोपचार हेतु 5 ग्राम कल्चर प्रति कि.ग्रा. बीज हेतु पर्याप्त होती है। राइजोबियम कल्चर से बीजोपचार की तरह ही उपरोक्त कल्चर से बीजोपचार करना चाहिए।

अनुशंसित किस्मों का विशेषताएँ:

किस्म	अवधि	उपज क्विं./हे.	विवरण
इंदिरा चना-1	101-116	16	उकठा निरोधक
वैभव	120-130	18-19	उकठा निरोधक
छत्तीसगढ़ चना-2	90-105	18-20	उकठा निरोधक, 23.5 ग्राम/100 बीज
छत्तीसगढ़ लोचन चना	100-110	18-20	उकठा निरोधक, सिंचित, 25.46 ग्राम/100 बीज
छत्तीसगढ़ अक्षय चना	94	16	उकठा निरोधक, सिंचित, 25.4 ग्राम /100 बीज,

			उच्च प्रोटीन (22.09%)
आई.पी.सी. 2066-77	112	20-22	देरी से बुवाई हेतु, उच्च प्रोटीन (24.63 प्रतिशत)

बोने की विधि

अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए कतार में बोवाई विधि उत्तम है। इसके लिए नारी हल या सीड ड्रिल का उपयोग करना चाहिए। फसल की बोआई हेतु पंक्ति से पंक्ति की दूरी 30 से.मी. तथा पौध से पौध की दूरी 10 से. मी. रखते हैं। बीजों को 5-7 से.मी. की गहराई पर बोना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक प्रबंधन

अधिकतम उपज के लिए पौधों के पोषक तत्वों की पूर्ति खाद एवं उर्वरकों के माध्यम से करना आवश्यक है। गोबर की खाद अथवा कम्पोस्ट पांच टन प्रति हेक्टेयर के हिसाब से खेत की तैयारी के समय देना चाहिए। चने की फसल से अच्छी उपज लेने के लिए 20 किलो नत्रजन, 40-50 किलो फास्फोरस, 20 किलो पोटाश व 20 किलो सल्फर प्रति हेक्टेयर का उपयोग करना चाहिए। उर्वरक की पूरी मात्रा बुवाई के समय बीज के नीचे 5-7 से.मी. की गहराई पर देना लाभप्रद रहता है।

सिंचाई

आमतौर पर चने की खेती असिंचित अवस्था में की जाती है। चने की फसल के लिए कम जल की आवश्यकता होती है। चने में जल उपलब्धता के आधार पर पहली सिंचाई फूल आने के पूर्व अर्थात् बोने के 45 दिन बाद एवं दूसरी सिंचाई दाना भरने की अवस्था पर अर्थात् बोने के 75 दिन बाद करना चाहिए।

खरतवार नियंत्रण

चना बुवाई से 30-60 दिन तक खेत खरपतवार मुक्त रहना आवश्यक है। बुवाई के 25-30 दिन बाद एक मिंदाई/गुडाई करने से उपज में वृद्धि होती है।



चना में रासायनिक खरपतवार प्रबंधन:

क्र.	खरपतवारनाशी का तकनीकी नाम	प्रति एकड़ मात्रा (सक्रिय तत्व) (मि.ली./ग्रा.)	डालने का समय	नियंत्रित होने वाले खरपतवार
1.	ऑक्सीफ्लुओरफेन 23.5% ई.सी.	150 से 200	बोनी के 0-3 दिन के अंदर	चैड़ी पत्ती वाले खरपतवारों एवं कुछ घास वर्गीय खरपतवारों को नियंत्रित करता है।
2.	पेंडीमेथलिन 38.7% ई.सी.	270	बोनी के 0-3 दिन के अंदर	अधिकतर घास कुल व चुनिन्दा चैड़ी पत्ती वाले खरपतवार को नियंत्रित करता है।
3.	प्रोपाक्युजाफॉप -पी-ईथाइल 10 ई.सी.	16 से 20	बोनी के 15 दिन के बाद किन्तु 20 दिन के अंदर	ये संकरी पत्ती वाले खरपतवारों को नियंत्रित करता है।

चने के प्रमुख खरपतवार:



Medicago denticulata (चनौरी)



Melilotus albus (सफेद बन मेथी)



Chenopodium album (बधुआ)



Cynodon dactylon (दूब घास)



Parthenium hysterophorus
(गाजर घास)



Physalis minima (चिरपोटी)



पौध संरक्षण

रोग प्रबंधन:

1. उकठा (विल्ट)

रोगजनक: यह रोग *फ्यूजेरियम ऑक्सीस्पोरम* साइसेरी (*Fusarium oxysporum* f. sp. *ciceris*) फफूंद द्वारा होता है।

लक्षण:

रोग के लक्षण फसल की बुवाई के लगभग 15 से 20 दिन बाद दिखाई देने प्रारंभ होते हैं। इस रोग के प्रमुख लक्षणों में पौधों की वृद्धि रूक जाती है और पत्तियां पीली पड़कर सिकुड़ने लगती हैं। रोगग्रस्त पौधों की जड़ें अविकसित रह जाती हैं और हल्के भूरे रंग की दिखाई देती हैं। यदि फसल की पुष्पपुंज अवस्था में संक्रमित जड़ को अनुप्रस्थ रूप में काटकर निरीक्षण किया जाये तो इसकी कुछ जाइलम वाहिकाओं की भित्तियां हल्के भूरे रंग की दिखाई देती हैं और रोगजनक कवक के कवकतन्तु जाइलम वाहिकाओं की भित्तियों के आसपास फैले हुए मिलते हैं।

नियंत्रण:

सदैव रोगरहित प्रमाणित बीजों को ही बोना चाहिए। बीज को हेक्साकोनेजोल (1 मि.ली./ किलो बीज) या ट्राइकोडर्मा 10 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से उपचारित कर बोना चाहिये। कम से कम 3 वर्ष का फसल चक्र अपनाना चाहिये। ग्रीष्म ऋतु में मिट्टी पलटने वाले हल से खेत की गहरी जुताई करना चाहिये। हल्की भूमि में बीजों को 8-10 सेमी- गहरा बोने से यह रोग कम उत्पन्न होता है। खेत में मूंगफली, तिल या सरसों की खली खाद के रूप में डाली जाय तो रोग कम लगता है। सदैव चना की उकठा प्रतिरोधी या रोग सहनशील किस्में ही बोनी चाहिए जैसे- जी.जी.-1, बी.जी.-391, बी.जी.डी.-72, काक-2, जाकी-1 एवं जे.जी.के.-2 आदि को उगाना चाहिये।

2. कॉलर रॉट:

रोगजनक: *स्क्लेरोशियम रॉल्फसाई* (*Sclerotium rolfsii*)

लक्षण:

यह रोग प्रारंभिक अवस्था में अर्थात् बुवाई के छह सप्ताह तक आता है। खेत में बिखरी हुई पीली होती हुई पत्तियों के साथ पौधों का सूखना रोग का संकेत है। पौधों की पत्तियां पीली (क्लोरोसिस) हो जाती हैं। तना और जड़ का जोड़ मुलायम होकर सिकुड़ जाता है और सड़ने

लगता है। संक्रमित भाग भूरे-सफेद रंग के हो जाते हैं। सफेद संक्रमित भागों पर सरसों के आकार जैसे काले बिंदु दिखाई देते हैं, जिन्हें स्क्लेरोटिया कहा जाता है।

नियंत्रण:

गर्मियों में गहरी जुताई करें। बुवाई के समय अधिक नमी से बचें। पौधों को अत्यधिक नमी से बचाकर रखें। पिछली फसल और खरपतवार के अवशेषों को बुवाई से पहले और कटाई के बाद नष्ट कर दें। भूमि तैयार करने से पहले सभी अविघटित पदार्थों को खेत से हटा दें। बुवाई के पहले बीज को हेक्सोकोनेजोल (1 मि.ली.) फफूंदनाशक दवा से या ट्राइकोडर्मा जैव नियंत्रक से 10 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से उपचारित कर बोना चाहिये।

कीट नियंत्रण:

फली छेदक: *हेलिकोवर्पा आर्मिजेरा* (*Helicoverpa armigera*)

इसका प्रकोप फली में दाना बनते समय अधिक होता है तथा इसका नियंत्रण नहीं करने पर उपज में 75 प्रतिशत तक कमी आ सकती है। इसके रोकथाम के लिए नोवालुरॉन 5.25% + इंडोक्साकार्ब 4.5% एस.सी. (एडामा प्लेथोरा) दवा को 330-350 मि.ली. मात्रा को 150-200 लीटर पानी में मिलाकर एक एकड़ में छिड़काव करना चाहिए। खेत में फेरोमोन ट्रेप लगाएँ (5-6 प्रति एकड़)। एनपीवी (nucleopolyhedrovirus) का छिड़काव करें। नीम तेल एक प्रभावी जैविक कीटनाशक है। प्रति लीटर पानी में 5 मि.ली. नीम तेल मिलाकर चने के खेत में छिड़काव करें। यह कीटों की संख्या को नियंत्रित करने के लिए प्राकृतिक तरीके से कार्य करता है।

कटाई, उपज एवं भण्डारण:

चने की फसल से प्रति हेक्टेयर लगभग 18-20 क्विं. दाना प्राप्त होता है। फसल जब हल्की पीली दिखाई पड़ने लगे तब इसकी कटाई की जाती है। अधिक पक जाने पर इसकी फल्लियां अन्य दलहनी फसलों की तरह चटकने लगती हैं। हँसिया से फसल की कटाई करने के बाद उसके दानों को फलियों से अलग कर लेना चाहिए। तत्पश्चात् 10-12 प्रतिशत नमी पर इसका सुरक्षित भण्डारण करते हैं। भण्डारण गृह में कीट आदि नियंत्रण के लिये समुचित विधियां अवश्य अपनार्यें।





भारत के उन्नत कृषि में पुस्तकालय का महत्व

रोशनी साहू- इंदिरा गांधी शासकीय महाविद्यालय पंडरिया, कवर्धा (छ.ग.)
 सुलेन्द्र राम- चंदूलाल चंद्राकर शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय धमधा, दुर्ग (छ.ग.)
 योगेश कुमार- शासकीय पातालेश्वर महाविद्यालय मस्तूरी, बिलासपुर (छ.ग.)
 मुक्तिलता किसपोट्टा- नवीन शासकीय महाविद्यालय नागपुर, एम.सी.बी. (छ.ग.)
 ईश्वरी कंवर- शासकीय डॉ. इन्द्रजीत सिंह महाविद्यालय अकलतरा, जाँजगीर-चाम्पा (छ.ग.)

भारत शुरू से ही एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ कृषि सिर्फ आर्थिक गतिविधि नहीं, बल्कि सामाजिक संरचना, आजीविका और सांस्कृतिक पहचान का प्रमुख आधार है। स्वतंत्रता के बाद से भारतीय कृषि ने श्वेत क्रांति, गुलाबी क्रांति, हरित क्रांति, पिली क्रांति और नीली क्रांति जैसे अनेक चरणों से होकर विकास किया है। किंतु 21वीं सदी में कृषि के समक्ष नई चुनौतियाँ—जैसे जनसंख्या विस्फोट, प्राकृतिक संसाधनों का क्षरण, जलवायु परिवर्तन, घटती भूमि उत्पादकता तथा वैश्विक प्रतिस्पर्धा उभरकर सामने आई हैं। इन परिस्थितियों में कृषि को पारंपरिक पद्धतियों से आगे बढ़ाकर उन्नत, वैज्ञानिक, टिकाऊ और ज्ञान-आधारित बनाना अनिवार्य हो गया है।

उन्नत कृषि के इस परिवर्तनकारी दौर में सूचना और ज्ञान की भूमिका केंद्रीय हो जाती है। पुस्तकालय, जो ज्ञान के संग्रह, संरक्षण, संगठन और प्रसार के प्रमुख केंद्र हैं, भारत में उन्नत कृषि के विकास में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। यह लेख भारत में उन्नत कृषि की अवधारणा, कृषि शिक्षा, अनुसंधान, विस्तार सेवाओं, डिजिटल कृषि, किसान सशक्तिकरण और नीति निर्माण के संदर्भ में पुस्तकालयों की भूमिका और महत्व का व्यापक, विश्लेषणात्मक एवं समन्वित अध्ययन प्रस्तुत करता है।

प्रस्तावना

भारत की सभ्यता का उदय कृषि के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ा रहा है। सिंधु घाटी सभ्यता से लेकर आधुनिक भारत तक कृषि ने समाज

की आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संरचना को आकार दिया है। आज भी भारत की लगभग आधी आबादी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से खेती पर निर्भर है। राष्ट्रीय आय, रोजगार सृजन, खाद्य सुरक्षा और ग्रामीण विकास में कृषि की भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण है।

स्वतंत्रता के समय भारत खाद्यान्न की गंभीर कमी से जूझ रहा था। हरित क्रांति के माध्यम से वैज्ञानिक अनुसंधान, उन्नत बीज, सिंचाई और उर्वरकों के उपयोग ने देश को खाद्य आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर किया। यह परिवर्तन इस बात का प्रमाण था कि जब ज्ञान और सूचना का प्रभावी उपयोग किया जाता है, तो कृषि में क्रांतिकारी बदलाव संभव है।

वर्तमान समय में कृषि का स्थिति और अधिक कठिन हो गया है। जलवायु परिवर्तन के कारण मौसम की अनिश्चितता, मृदा की उर्वरता में कमी, घटते जल संसाधन, बढ़ती उत्पादन लागत और बाजार की अस्थिरता ने किसानों के समक्ष नई चुनौतियाँ खड़ी कर दी हैं। इन चुनौतियों से निपटने के लिए कृषि को ज्ञान-आधारित, सूचना-संपन्न और तकनीक-सहायित बनाना आवश्यक हो गया है। इस संदर्भ में पुस्तकालयों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है।

उन्नत कृषि की अवधारणा

उन्नत कृषि का तात्पर्य ऐसी कृषि प्रणाली से है, जो आधुनिक विज्ञान, प्रौद्योगिकी और सूचना का उपयोग कर अधिक उत्पादन, बेहतर गुणवत्ता, पर्यावरण संरक्षण और आर्थिक स्थिरता सुनिश्चित करे। यह



केवल उत्पादन बढ़ाने तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें निम्नलिखित आयाम शामिल हैं:

सटीक कृषि (Precision Agriculture):- जिसमें डेटा, सेंसर, ड्रोन और GIS तकनीक का उपयोग किया जाता है।

जलवायु-स्मार्ट कृषि:- जो बदलते मौसम के अनुकूल हो।

कृषि यंत्रीकरण एवं स्वचालन:- श्रम की कमी और लागत घटाने हेतु।

जैविक एवं प्राकृतिक कृषि:- पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य के प्रति संवेदनशील।

डिजिटल कृषि:- सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी पर आधारित।

इन सभी आयामों का आधार ज्ञान और सूचना है। बिना प्रमाणिक और अद्यतन जानकारी के उन्नत कृषि की कल्पना संभव नहीं है।

ज्ञान, सूचना और कृषि का अंतर्संबंध

कृषि एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ निर्णय प्रतिदिन लिए जाते हैं- कौन-सी फसल बोई जाए, कब सिंचाई हो, कितना उर्वरक डाला जाए, किस रोग का उपचार किया जाए और कब बाजार में उत्पाद बेचा जाए। ये सभी निर्णय सूचना पर आधारित होते हैं। सूचना के अभाव में निम्न प्रभाव पड़ सकते हैं -

- ✓ उत्पादन घट सकता है।
- ✓ लागत बढ़ सकती है।
- ✓ प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन हो सकता है।
- ✓ किसान आर्थिक संकट में पड़ सकता है।

इसलिए उन्नत कृषि के लिए एक ऐसी सूचना प्रणाली आवश्यक है, जो विश्वसनीय, सुलभ और समयानुकूल हो। पुस्तकालय इस सूचना प्रणाली का केंद्रीय अंग है।

पुस्तकालय: परंपरागत ज्ञान केंद्र से आधुनिक सूचना केंद्र तक

पारंपरिक रूप से पुस्तकालयों को पुस्तकों के संग्रहालय के रूप में देखा जाता था। किंतु आधुनिक युग में पुस्तकालयों का स्वरूप पूरी तरह बदल चुका है। आज पुस्तकालय ज्ञान प्रबंधन केंद्र, डिजिटल सूचना हब, अनुसंधान सहायता प्रणाली एवं प्रशिक्षण एवं ई-लर्निंग केंद्र के रूप में कार्य कर रहे हैं। कृषि के क्षेत्र में पुस्तकालय केवल वैज्ञानिकों या छात्रों तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वे किसानों, विस्तार अधिकारियों, नीति निर्माताओं और उद्यमियों तक सूचना पहुंचाने का माध्यम बन चुके हैं।

कृषि शिक्षा में पुस्तकालयों की भूमिका

कृषि शिक्षा उन्नत कृषि की नींव है। भारत में कृषि शिक्षा का संचालन कृषि विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों और तकनीकी संस्थानों के माध्यम से होता है। इन संस्थानों के पुस्तकालय निम्न कार्य करते हैं-

- ✓ पाठ्यक्रम आधारित पुस्तकों और संदर्भ ग्रंथों की उपलब्धता,
- ✓ राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय शोध पत्रिकाओं तक पहुंच,
- ✓ छात्रों में शोध एवं नवाचार की प्रवृत्ति का विकास,
- ✓ शिक्षकों को नवीनतम ज्ञान से जोड़ना।

उन्नत कृषि से जुड़े विषय जैसे जैव प्रौद्योगिकी, कृषि इंजीनियरिंग, कृषि सूचना विज्ञान तेजी से विकसित हो रहे हैं। इन विषयों पर अद्यतन साहित्य तक पहुंच पुस्तकालयों के बिना संभव नहीं है।

कृषि अनुसंधान और पुस्तकालय

कृषि अनुसंधान किसी भी देश की कृषि प्रगति का आधार होता है। भारत में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (ICAR) और उसके अंतर्गत कार्यरत संस्थान कृषि अनुसंधान का नेतृत्व करते हैं। इन संस्थानों के पुस्तकालय शोध प्रकाशनों का संग्रह और संरक्षण, वैज्ञानिकों को वैश्विक शोध से जोड़ना, शोध डेटा, तकनीकी रिपोर्ट और पेटेंट जानकारी उपलब्ध कराना एवं साहित्य समीक्षा और संदर्भ प्रबंधन में सहायता करते हैं। उन्नत कृषि में अनुसंधान आधारित निर्णय अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, और पुस्तकालय इस प्रक्रिया के अनिवार्य सहायक हैं।

किसानों के लिए पुस्तकालय और सूचना केंद्र

भारत में अधिकांश किसान छोटे और सीमांत हैं, जिनकी आधुनिक सूचना तक पहुंच सीमित होती है। ऐसे में कृषि पुस्तकालय, ग्रामीण पुस्तकालय और सूचना केंद्र किसानों के लिए विश्वसनीय ज्ञान स्रोत, प्रशिक्षण और जागरूकता का माध्यम, सरकारी योजनाओं और नीतियों की जानकारी का केंद्र बनते हैं। कई राज्यों में मोबाइल लाइब्रेरी और सामुदायिक सूचना केंद्र किसानों तक उन्नत कृषि तकनीकों की जानकारी पहुंचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

डिजिटल पुस्तकालय और ई-कृषि

डिजिटल क्रांति ने पुस्तकालयों के स्वरूप को पूरी तरह बदल दिया है। डिजिटल कृषि पुस्तकालय ई-पुस्तकें और ई-जर्नल, ऑनलाइन डेटाबेस, ओपन एक्सेस रिपॉजिटरी, मल्टीमीडिया सामग्री आदि के माध्यम से 24x7 सूचना उपलब्ध कराते हैं। डिजिटल पुस्तकालयों ने ज्ञान को भौगोलिक सीमाओं से मुक्त कर दिया है, जिससे उन्नत कृषि तकनीकों का तीव्र प्रसार संभव हुआ है।



कृषि विस्तार सेवाएँ और पुस्तकालय

कृषि विस्तार सेवाएँ अनुसंधान और किसानों के बीच सेतु का कार्य करती हैं। पुस्तकालय:

- ✓ विस्तार अधिकारियों को प्रशिक्षण सामग्री प्रदान करते हैं,
- ✓ स्थानीय भाषाओं में कृषि साहित्य विकसित करते हैं,
- ✓ सामुदायिक शिक्षा और जागरूकता कार्यक्रमों में सहयोग करते हैं।

इस प्रकार पुस्तकालय उन्नत कृषि को प्रयोगशाला से खेत तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

कृषि नीति निर्माण में पुस्तकालयों का योगदान

कृषि नीति निर्माण में ऐतिहासिक आंकड़ों, शोध निष्कर्षों और विश्लेषण की आवश्यकता होती है। पुस्तकालय:

- ✓ नीति निर्माताओं को प्रमाणिक सूचना प्रदान करते हैं,
- ✓ योजनाओं के मूल्यांकन में सहायता करते हैं,
- ✓ दीर्घकालिक कृषि रणनीतियों के निर्माण में योगदान देते हैं,
- ✓ सुदृढ़ और वैज्ञानिक कृषि नीतियों के लिए पुस्तकालय अपरिहार्य हैं।

उन्नत कृषि में पुस्तकालयों के समक्ष चुनौतियाँ

यद्यपि पुस्तकालयों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है, फिर भी कई चुनौतियाँ विद्यमान हैं:

- ग्रामीण क्षेत्रों में पुस्तकालयों की कमी,
- डिजिटल विभाजन और तकनीकी असमानता,
- प्रशिक्षित पुस्तकालय कर्मियों का अभाव,

- स्थानीय और क्षेत्रीय भाषाओं में सामग्री की कमी,
- वित्तीय संसाधनों की सीमित उपलब्धता।

इन चुनौतियों का समाधान किए बिना उन्नत कृषि में पुस्तकालयों की पूरी क्षमता का उपयोग संभव नहीं है।

भविष्य की दिशा और संभावनाएँ

भविष्य में कृषि पुस्तकालय कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित सूचना सेवाएँ, बिग डेटा और कृषि विश्लेषण, निर्णय समर्थन प्रणाली, वर्चुअल प्रशिक्षण और ई-लर्निंग प्लेटफॉर्म के माध्यम से उन्नत कृषि को नई दिशा दे सकते हैं। यदि पुस्तकालयों को राष्ट्रीय कृषि विकास रणनीति का अभिन्न अंग बनाया जाए, तो उनका प्रभाव कई गुना बढ़ सकता है।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः यह स्पष्ट है कि उन्नत कृषि सिर्फ तकनीकी नवाचार का परिणाम नहीं है, बल्कि यह एक समुचे, ज्ञान-आधारित प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में पुस्तकालयों की भूमिका केंद्रीय, बहुआयामी और अपरिहार्य है। पुस्तकालय न सिर्फ ज्ञान का संरक्षण एवं सम्वर्धन करते हैं, बल्कि उसे समाज के अंतिम व्यक्ति-किसान तक पहुँचाने का कार्य भी करते हैं। भारत में उन्नत कृषि के सतत और समावेशी विकास के लिए पुस्तकालयों को सशक्त बनाना, डिजिटल रूप से सक्षम करना और कृषि विकास की मुख्यधारा से जोड़ना अनिवार्य है। इस प्रकार पुस्तकालय भारत की उन्नत कृषि यात्रा के मौन किंतु सशक्त स्तंभ सिद्ध होते हैं।





पूर्वी उत्तर प्रदेश में केंचुआ जैव विविधता पारिस्थितिकी और कृषि महत्व

घनश्याम शुक्ला*- शोधार्थी, जंतु विज्ञान विभाग, डॉ. कृष्ण राज सिंह- एसोसिएट प्रोफेसर, जंतु विज्ञान विभाग
महाकौशल यूनिवर्सिटी, जबलपुर (मध्य प्रदेश)

डॉ. अभिनव सिंह- असिस्टेंट प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष, जंतु विज्ञान विभाग, गंगा राम कमलापुरी- शोधार्थी, जंतु विज्ञान विभाग
आचार्य नरेंद्र देव किसान स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बभनान, गोंडा (उत्तर प्रदेश)

पूर्वी उत्तर प्रदेश, जिसे 'पूर्वांचल' के नाम से जाना जाता है, अपनी उपजाऊ गंगा-घाघरा की जलोढ़ मिट्टी और आर्द्र जलवायु के कारण कृषि और जैव विविधता का केंद्र रहा है। यहाँ की मिट्टी में 'केंचुआ' (Earthworm) एक अदृश्य लेकिन सबसे शक्तिशाली इंजन की तरह कार्य करता है। अरस्तू ने इन्हें "पृथ्वी की आंतें" (Intestines of the Earth) कहा था, और चार्ल्स डार्विन ने इन्हें "दुनिया का सबसे महत्वपूर्ण हलवाहा" माना। पूर्वांचल के जिलों जैसे वाराणसी, संतकबीर नगर, गोरखपुर, देवरिया और बलिया में केंचुओं की विविधता न केवल मिट्टी के स्वास्थ्य को निर्धारित करती है, बल्कि यहाँ के खाद्य सुरक्षा का भी आधार है।

पूर्वांचल की भौगोलिक एवं जलवायु स्थिति और केंचुआ आवास:

केंचुओं का वितरण मिट्टी के प्रकार, नमी, कार्बनिक पदार्थ और तापमान पर निर्भर करता है-

✓ **मिट्टी का प्रकार:** पूर्वांचल में मुख्य रूप से बलुई दोमट (Sandy Loam) और जलोढ़ मिट्टी (Alluvial Soil) पाई जाती है। संतकबीर नगर और बस्ती जैसे क्षेत्रों में 'कछार' की मिट्टी केंचुओं के लिए स्वर्ग के समान है।

✓ **जलवायु:** यहाँ की वार्षिक वर्षा (औसतन 1000-1200 मिमी) और आर्द्र गर्मी केंचुओं के प्रजनन के लिए अनुकूल है। जून से अक्टूबर (मानसून) के बीच इनकी आबादी अपने चरम पर होती है।

पूर्वी उत्तर प्रदेश में पाई जाने वाली प्रमुख केंचुआ प्रजातियां:

पूर्वी उत्तर प्रदेश के गंगा के मैदानी इलाकों में किए गए सर्वेक्षणों के अनुसार, यहाँ केंचुओं की मुख्य रूप से तीन श्रेणियां पाई जाती हैं:

A. एपीजिक (Epigeic) - सतह पर रहने वाले: ये केंचुए मिट्टी की सतह पर पड़े पत्तों और कचरे को खाते हैं।



➤ *Eisenia fetida* (लाल केंचुआ): यह प्रजाति पूर्वाचल की वर्मीकम्पोस्ट इकाइयों में सबसे लोकप्रिय है। यह कचरे को बहुत तेजी से खाद में बदलता है।

B. एंडोजिक (Endogeic) - मिट्टी के भीतर रहने वाले: ये केंचुए मिट्टी के अंदर क्षैतिज (Horizontal) सुरंगें बनाते हैं और मिट्टी में मौजूद सूक्ष्म जीवों को खाते हैं।

➤ *Metaphire posthuma*: यह संतकबीर नगर और वाराणसी के खेतों में पाई जाने वाली सबसे सामान्य प्रजाति है। यह मिट्टी के वातन (Aeration) में मदद करती है।

➤ *Lampito mauritii*: यह प्रजाति पूर्वाचल के बगीचों और धान के खेतों में प्रचुर मात्रा में मिलती है।

C. एनेसिक (Anecic) - गहरी सुरंग बनाने वाले: ये सतह से गहरी मिट्टी तक लंबवत (Vertical) सुरंगें बनाते हैं।

➤ *Eutyphoeus incommodus*: यह उत्तर प्रदेश की एक प्रमुख स्थानिक (Native) प्रजाति है। यह मिट्टी की गहरी परतों से पोषक तत्वों को ऊपर लाने का काम करती है।

सर्वाधिक प्रभावी प्रजातियां

इस क्षेत्र में *Lampito mauritii* और *Metaphire posthuma* सबसे प्रमुख प्रजातियां मानी जाती हैं।

प्रमुख देशी प्रजातियां (Native Species):

🌳 *Eutyphoeus incommodus*: मुख्य रूप से धान के खेतों और घास के मैदानों में पाए जाते हैं।

🌳 *Eutyphoeus nicholsoni*: बगीचों की मिट्टी और सड़े हुए पत्तों के पास मिलते हैं।

🌳 *Octochaetona surensis*: बांस के बागानों में अधिकता से पाए जाते हैं।

🌳 *Ramiella bishambari*: गन्ना और ज्वार के खेतों में देखे जाते हैं।

विदेशी प्रजातियां (Exotic Species):

🌳 *Eisenia fetida* और *Eudrilus eugeniae* जैसी प्रजातियां मुख्य रूप से वर्मीकम्पोस्ट (केंचुआ खाद) इकाइयों में उपयोग की जाती हैं।

संतकबीर नगर: एक केस स्टडी:

संतकबीर नगर में बखीरा पक्षी अभयारण्य और घाघरा नदी का तराई क्षेत्र केंचुओं की विशिष्ट प्रजातियों का आवास है। यहाँ की मिट्टी का pH मान (लगभग 7.02) केंचुओं के लिए आदर्श है।

जैविक महत्व:

यहाँ के किसान अब पारंपरिक रसायनिक खेती छोड़कर वर्मीकम्पोस्ट की ओर बढ़ रहे हैं। जिले के मगहर और खलीलाबाद क्षेत्रों में केंचुओं का उपयोग करने के कचरे को खाद बनाने में किया जा रहा है।

केंचुओं का पारिस्थितिकी महत्व

केंचुए पारिस्थितिकी तंत्र के 'अभियंता' (Engineers) हैं:

- ✓ **मृदा वातन और जल धारण:** केंचुओं द्वारा बनाई गई सुरंगें मिट्टी में ऑक्सीजन का संचार करती हैं। इससे मानसून के दौरान जल भराव कम होता है और पानी सीधे भूजल स्तर (Groundwater) तक पहुँचता है।
- ✓ **पोषक तत्व चक्र (Nutrient Cycling):** केंचुए मृत पौधों और अवशेषों को खाते हैं। उनके पाचन तंत्र से गुजरने के बाद, मिट्टी नाइट्रोजन में 5 गुना, फास्फोरस में 7 गुना और पोटेशियम में 11 गुना अधिक समृद्ध होकर 'वर्मीकास्ट' के रूप में बाहर आती है।
- ✓ **सूक्ष्मजीव गतिविधि:** केंचुए मिट्टी में लाभकारी बैक्टीरिया और कवक (Fungi) की आबादी को 40% तक बढ़ा देते हैं।

कृषि महत्व: पूर्वाचल के किसानों का मित्र

पूर्वी उत्तर प्रदेश में खेती का मुख्य आधार धान, गेहूँ और गन्ना है। केंचुए यहाँ के किसानों के लिए निम्नलिखित लाभ प्रदान करते हैं:

- ✓ **लागत में कमी:** रसायनिक उर्वरकों (यूरिया, डीएपी) पर निर्भरता कम होती है, जिससे खेती की लागत 30-40% कम हो जाती है।
- ✓ **फसल की गुणवत्ता:** केंचुआ खाद से उगी फसलें (जैसे सिद्धार्थनगर का काला नमक चावल) अधिक स्वादिष्ट और स्वास्थ्यवर्धक होती हैं।
- ✓ **मृदा सुधार:** पूर्वाचल के कुछ क्षेत्रों में मिट्टी 'उसरीली' (क्षारीय) हो रही है। केंचुए मिट्टी के pH मान को संतुलित कर उसे फिर से उपजाऊ बनाते हैं।

पारिस्थितिक और कृषि महत्व:

केंचुए पूर्वाचल की कृषि अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं:

- ✓ **मृदा संरचना में सुधार:** केंचुए मिट्टी में सुरंगें बनाकर वायु संचार (aeration) और जल निकासी को बेहतर बनाते हैं, जिससे पौधों की जड़ें गहराई तक जा पाती हैं।
- ✓ **पोषक तत्वों का चक्रण:** ये पौधों के अवशेषों को खाकर उन्हें 'वर्मीकास्ट' (केंचुआ विष्टा) के रूप में बाहर निकालते हैं, जो नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटेशियम (NPK) से भरपूर होता है।



- ✓ **मिट्टी का निर्माण:** विशेषज्ञों के अनुसार, केंचुए प्रतिवर्ष 2 से 250 टन मिट्टी को उलट-पलट कर सकते हैं, जिससे मिट्टी की ऊपरी सतह की मोटाई बढ़ती है।
- ✓ **प्राकृतिक हल:** इन्हें "किसानों का मित्र" और "प्राकृतिक हल" कहा जाता है क्योंकि ये बिना किसी मशीनरी के मिट्टी की जुताई करते हैं।

विविधता पर प्रभाव डालने वाले कारक:

पूर्वांचल में केंचुओं की संख्या और विविधता कई कारकों पर निर्भर करती है:

- ✓ **ऋतु:** मानसून के दौरान उच्च नमी और भोजन की उपलब्धता के कारण इनकी संख्या सर्वाधिक होती है, जबकि सर्दियों और गर्मियों में यह कम हो जाती है।
- ✓ **मिट्टी के गुण:** मिट्टी में नमी की मात्रा, पीएच (pH) मान और जैविक कार्बन का स्तर केंचुओं की आबादी को सीधे प्रभावित करता है।
- ✓ **मानवीय हस्तक्षेप:** रसायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का अत्यधिक उपयोग केंचुओं की विविधता के लिए एक बड़ा खतरा है।

संरक्षण और संवर्धन:

पूर्वांचल के किसानों के लिए केंचुओं का संरक्षण आवश्यक है। प्राकृतिक खेती और जैविक खाद के उपयोग को बढ़ावा देकर इनकी आबादी बढ़ाई जा सकती है। कुशीनगर जैसे जिलों में शोध से पता चला है कि फसल अवशेषों का सही प्रबंधन केंचुआ जैव विविधता को सुरक्षित रखने में मदद करता है।

संरक्षण और संवर्धन के उपाय:

पूर्वांचल की जैव विविधता को बचाने के लिए निम्नलिखित कदम आवश्यक हैं:

- ✓ शून्य बजट प्राकृतिक खेती (ZBNF) को बढ़ावा देना।

✓ खेतों के किनारे मेड़ों पर पेड़ लगाना ताकि उन्हें छाया और नमी मिल सके।

✓ गाँवों में सामुदायिक वर्मीकम्पोस्ट पिट का निर्माण।

निष्कर्ष

पूर्वी उत्तर प्रदेश (पूर्वांचल) के कृषि-पारिस्थितिकी तंत्र में केंचुए केवल एक जीव मात्र नहीं, बल्कि मृदा स्वास्थ्य के आधार स्तंभ हैं। पूरे पूर्वांचल में, विशेषकर गंगा-घाघरा के मैदानी क्षेत्रों में, केंचुओं की जैव विविधता यहाँ की खाद्य सुरक्षा को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है। केंचुए मिट्टी के भौतिक गुणों (जैसे वातन और जल धारण क्षमता) और रासायनिक गुणों (जैसे NPK स्तर) के बीच एक सेतु का कार्य करते हैं। निष्कर्षतः, केंचुओं की उपस्थिति इस बात का प्रमाण है कि मिट्टी जीवित है। यदि केंचुओं की आबादी में गिरावट आती है, तो यह न केवल कृषि उत्पादन को कम करेगा, बल्कि भविष्य में मिट्टी के मरुस्थलीकरण (Desertification) का मार्ग भी प्रशस्त करेगा। पूर्वी उत्तर प्रदेश की खाद्य सुरक्षा और पर्यावरणीय स्थिरता केंचुओं की सुरक्षा से सीधे जुड़ी हुई है। संतकबीर नगर से लेकर बलिया तक, यदि हम अपनी मिट्टी के इस "मूक मित्र" को संरक्षित करते हैं, तो यह न केवल कृषि उत्पादन बढ़ाएगा बल्कि भविष्य की पीढ़ियों के लिए उपजाऊ भूमि भी सुनिश्चित करेगा। संतकबीर नगर जिले का अध्ययन केंचुआ जैव विविधता के महत्व को स्पष्ट रूप से रेखांकित करता है। जिले की भौगोलिक स्थिति, जो एक ओर 'बखीरा पक्षी अभयारण्य' की आर्द्रभूमि (Wetland) और दूसरी ओर घाघरा नदी के तराई क्षेत्र से घिरी है, इसे केंचुओं के लिए एक आदर्श प्रयोगशाला बनाती है। अंततः, पूर्वी उत्तर प्रदेश की मिट्टी की नियति इन छोटे जीवों के हाथों में है। संतकबीर नगर का अनुभव यह सिखाता है कि प्रकृति के इन 'नन्हें इंजीनियरों' का संरक्षण करके ही हम "स्वस्थ धरा, खेत हरा" के लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं। केंचुआ जैव विविधता का संरक्षण केवल पर्यावरण का मुद्दा नहीं, बल्कि यह पूर्वांचल के किसानों की समृद्धि और आने वाली पीढ़ियों के पोषण का अनिवार्य विकल्प है।





भिंडी: वैज्ञानिक खेती और औषधीय महत्व

शुभम पटेल, संजय कुमार, रेहान अंजुम, दीक्षा संघमित्रा

उद्यानिकी (सब्जी विज्ञान) विभाग, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, विद्या विहार, लखनऊ

आशीष कुमार सिंह

उद्यानिकी (सब्जी विज्ञान) विभाग, सरदार वल्लभ भाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय मेरठ

भिंडी [एबेलमोस्कस एस्कुलेंटस (एल.) मोएन्च] मालवेसी कुल से संबंधित एक महत्वपूर्ण ग्रीष्म ऋतु की सब्जी है। इसे लेडीज फिंगर, गम्बो आदि भी कहा जाता है। यह एक तीव्र वृद्धि करने वाली, कम अवधि और प्रकाश के प्रति असंवेदनशील प्रकृति की फसल है। इसके अपरिपक्व नरम हरे फल खाने योग्य भाग होते हैं, जिन्हें अधिकतर ताजी सब्जी के रूप में पकाया जाता है, लेकिन कभी-कभी सुखाकर भी खाया जाता है। भिंडी अपने अनेक गुणों जैसे उच्च पोषणता और औषधीय गुण, खेती करने में आसानी, व्यापक अनुकूलनशीलता और साल भर उगने की क्षमता के कारण फलदार सब्जियों में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

जलवायु और मिट्टी

इसे सभी प्रकार की मिट्टी में उगाया जा सकता है, लेकिन यह अच्छी उर्वरता से भरपूर बलुई दोमट मिट्टी में सबसे अच्छी तरह उगती है, और चिकनी दोमट मिट्टी में भी अच्छे परिणाम मिलते हैं, जिसमें कार्बनिक पदार्थ प्रचुर मात्रा में हो। हालांकि थोड़ी अम्लीय से तटस्थ pH वाली मिट्टी (6.0 से 6.8) बेहतर होती है, भिंडी जलभराव के प्रति संवेदनशील होती है, इसलिए मिट्टी में उचित जल निकासी सुनिश्चित होनी चाहिए, ताकि जड़ों का उचित विकास हो और रोग की संभावना कम हो।



इसे गर्म, आर्द्र जलवायु की आवश्यकता होती है, लेकिन पर्याप्त सिंचाई के साथ शुष्क मौसम में भी इसकी खेती की जा सकती है। यह पाले और ठंड के प्रति अत्यधिक संवेदनशील है और 25°C से 35°C के बीच का तापमान इसके लिए सबसे अच्छा रहता है, लेकिन 20 डिग्री सेल्सियस या उससे कम तापमान पर बीजों का अंकुरण ठीक से नहीं होता है। दक्षिण भारत और उत्तर भारत में भिंडी की खेती पूरे वर्ष की जा सकती है। इसकी खेती वसंत-ग्रीष्म (फरवरी-मार्च) और बरसात (जून-जुलाई) दोनों मौसमों में की जाती है।

भूमि की तैयारी

भिंडी उगाने वाले खेत को दो बार मोल्ड बोल्ड हल से जोतना चाहिए और फिर मिट्टी को बारीक बनाने के लिए उस पर पाटा लगाना चाहिए। खेत तैयार करते समय अच्छी तरह से सड़ी हुई गोबर की खाद (20 टन प्रति हेक्टेयर) मिलाएं। भिंडी की बुवाई मेड़ों पर या समतल क्यारियों पर की जा सकती है; भारी मिट्टी में मेड़ों पर बुवाई करना बेहतर होता है। नीम की खली, मुर्गी खाद या वर्मीकम्पोस्ट जैसी जैविक खाद का प्रयोग करने से पौधों की वृद्धि और उत्पादकता में सुधार होता है। नीम की खली और मुर्गी खाद के प्रयोग से उर्वरक की खपत को कम किया जा सकता है।

बीज की बुवाई

खेत में भिंडी के बीजों की सीधी बुवाई 1 से 2 सेमी. की गहराई पर की जाती है। यदि फसल उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में उगाई जा रही हो, पौधों के बीच लगभग 30 से 45 cm और कतारों के बीच 60 से 75 cm की दूरी रखी जाती है, ताकि हवा का संचार ठीक से हो सके और पौधों को पर्याप्त रोशनी मिल सके। बीज बोने के बाद खेत में एक बार सिंचाई जरूर करनी चाहिए, क्योंकि पानी मिलने पर ही बीजों का अंकुरण शुरू होता है।

बीज दर

बरसात ऋतू - 8-10 किग्रा. एवं

ग्रीष्म ऋतू- 18- 20 किग्रा./ हें०

पोषक तत्व प्रबंधन

भिंडी की वृद्धि और फल लगने की अवधि लंबी होती है, इसलिए इसकी मजबूती बनाए रखने और उत्पादन बढ़ाने के लिए संतुलित पोषण देना जरूरी होता है। उर्वरक की मात्रा मिट्टी परीक्षण के आधार पर निर्धारित की जानी चाहिए ताकि अनुशंसित मात्रा से अधिक या कम उर्वरक का उपयोग न हो। खेत तैयार करते समय 15-20 टन अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद डालें। बरसाती फसल के लिए प्रति हेक्टेयर 75 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 50 कि.ग्रा. फास्फोरस और 55 कि.ग्रा.

पोटेशियम डालें। ग्रीष्म ऋतु के लिए प्रति हेक्टेयर 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन और 40 कि.ग्रा. फास्फोरस डालें। नाइट्रोजन की आधी मात्रा और फास्फोरस और पोटेशियम की पूरी मात्रा बुवाई के समय डालें।

रासायनिक नाइट्रोजन की शेष आधी मात्रा को दो बराबर भागों में डालें: बुवाई के एक महीने बाद और भिंडी में फूल आने से ठीक पहले।

अंतर-फसल क्रियाएँ

भिंडी की खेती में निराई, गुड़ाई, और मिट्टी चढ़ाना महत्वपूर्ण अंतर-फसल क्रियाएँ हैं। पौधे के विकास के पहले 20-25 दिनों तक फसल को खरपतवार मुक्त रखना आवश्यक है। बरसात के मौसम में नियमित रूप से निराई करनी चाहिए और क्यारियों में मिट्टी चढ़ानी चाहिए। खरपतवारों के प्रभावी नियंत्रण के लिए बुवाई के 20-25 दिनों बाद 750 लीटर पानी में 1-2 लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से स्टॉम्प (पेंडिमेथालिन) का पूर्व-उद्भवन प्रयोग और उसके बाद एक बार हाथ से निराई करना भी आवश्यक है।

जल प्रबंधन

अपर्याप्त नमी वाली मिट्टी में बुवाई से पहले सिंचाई करनी चाहिए। पहली सिंचाई बुवाई के तुरंत बाद करनी चाहिए और फिर गर्मियों में 4 से 5 दिनों के अंतराल पर और सर्दियों में 10 से 12 दिनों के अंतराल पर खेत की सिंचाई करनी चाहिए। फूल आने और फल लगने के चरणों में पानी की कमी पौधों की वृद्धि, फलों के आकार और उपज को बुरी तरह प्रभावित करती है।

चुनौतियाँ

चित्तीदार बॉल वर्म, कट वर्म, जैसिड, लाल मकड़ी, विल्ट, पीली शिरा मोजेक, एनेशन लीफ कर्ल वायरस आदि कीट और रोग प्रबंधन संबंधी सिफारिशों कृषि अनुसंधान संस्थानों के मानक दिशानिर्देशों पर आधारित हो सकती है और स्थानीय कृषि-जलवायु परिस्थितियों के आधार पर भिन्न हो सकती हैं।

उत्पादन

बरसात ऋतू - 10-12 टन/ हें० एवं

ग्रीष्म ऋतू - 6-8 टन/ हें०

पोषण मूल्य

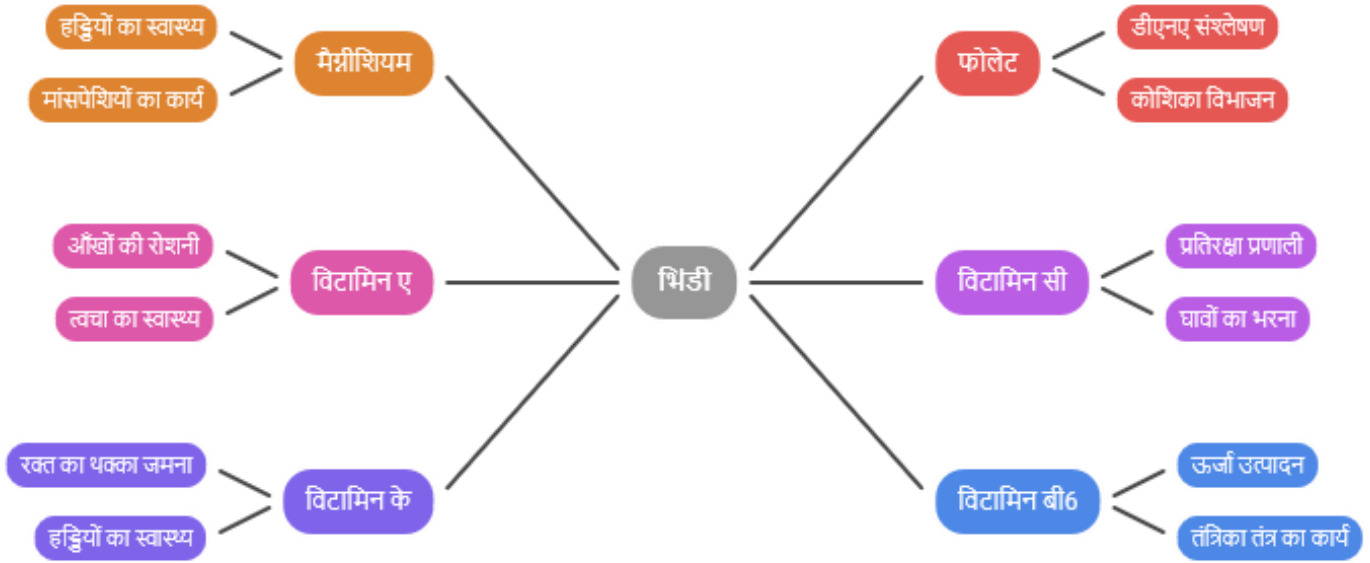
भिंडी विटामिन ए और सी, आयरन, आयोडीन से भरपूर होती है, जो कैंसर, मधुमेह, स्ट्रोक और हृदय रोग जैसी गंभीर स्वास्थ्य समस्याओं के जोखिम को कम करने में मदद करते हैं।

प्रति सर्विंग में पोषक तत्व

एक कप पकाई हुई भिंडी के टुकड़ों में निम्नलिखित पोषक तत्व होते हैं:



भिंडी के पोषक तत्व



कैलोरी: 35	प्रोटीन: 3 ग्राम
वसा: 0 ग्राम	कार्बोहाइड्रेट: 7 ग्राम
फाइबर: 4 ग्राम	चीनी: 4 ग्राम
आयरन: 0.6 माइक्रोग्राम	विटामिन ए: 42 माइक्रोग्राम
विटामिन सी: 14 मिलीग्राम	विटामिन के: 32 माइक्रोग्राम

स्वास्थ्य लाभ

भिंडी में कैलोरी कम होती है लेकिन यह पोषक तत्वों से भरपूर होती है। भिंडी में मौजूद विटामिन सी स्वस्थ रोग प्रतिरोधक क्षमता को बनाए रखने में सहायक होता है। भिंडी विटामिन के से भी भरपूर होती है, जो रक्त के थक्के जमने में मदद करता है। भिंडी के कुछ अन्य स्वास्थ्य लाभ इस प्रकार हैं:

कैंसर प्रतिरोधी

एंटीऑक्सीडेंट प्राकृतिक यौगिक होते हैं जो शरीर को फ्री रेडिकल्स नामक अणुओं से लड़ने में मदद करते हैं, जो कोशिकाओं को नुकसान पहुंचा सकते हैं। फ्री रेडिकल्स मुख्य रूप से ऑक्सीकरण क्षति के लिए जाने जाते हैं, जो अंततः कैंसर का कारण बन सकते हैं।

भिंडी में पॉलीफेनॉल नामक एंटीऑक्सीडेंट होते हैं, जिनमें विटामिन ए और सी शामिल हैं। इसमें लेक्टिन नामक प्रोटीन भी होता है जो मनुष्यों में कैंसर कोशिकाओं की वृद्धि को रोक सकता है। भिंडी से प्राप्त सांद्रित यौगिकों का उपयोग करके किए गए अध्ययनों से पता चला है कि उन्होंने स्तन कैंसर कोशिकाओं की वृद्धि को 63% तक रोक दिया।

भिंडी के कैंसर-रोधी गुणों के निश्चित प्रमाण के लिए और अधिक शोध की आवश्यकता है।

घेघा रोग सहायक

भिंडी में प्रचुर मात्रा में आयोडीन पाया जाता है जो की घेघा रोगियों के लिए बहुत फायदेमंद होता है इसके सेवन से घेघा रोग में नियंत्रण होता है

हृदय और मस्तिष्क स्वास्थ्य में सहायता

पॉलीफेनॉल रक्त के थक्के बनने से रोककर और फ्री रेडिकल से होने वाले नुकसान को कम करके हृदय संबंधी समस्याओं और स्ट्रोक के जोखिम को कम करते हैं। भिंडी में मौजूद एंटीऑक्सीडेंट मस्तिष्क की सूजन को कम करके मस्तिष्क को भी लाभ पहुंचा सकते हैं।

भिंडी में पाया जाने वाला गाढ़ा, जेल जैसा पदार्थ (म्यूसिलेज) पाचन के दौरान कोलेस्ट्रॉल से बंध जाता है, जिससे वह शरीर से बाहर निकल जाता है। चूहों पर किए गए आठ सप्ताह के एक अध्ययन में पाया गया कि भिंडी पाउडर युक्त उच्च वसा वाला आहार खिलाने के बाद उनके रक्त में कोलेस्ट्रॉल का स्तर कम हो गया।

रक्त शर्करा नियंत्रण

विभिन्न अध्ययनों से पता चला है कि भिंडी रक्त शर्करा के स्तर को नियंत्रित करने में सहायक हो सकती है। शोधकर्ताओं का मानना है कि भिंडी पाचन के दौरान शर्करा के अवशोषण को रोकने में मदद कर सकती है।



एक अध्ययन में, शुद्ध भिंडी और तरल चीनी दिए गए चूहों में नियंत्रण समूह के चूहों की तुलना में रक्त शर्करा में कम उतार-चढ़ाव देखा गया। मनुष्यों में रक्त शर्करा के स्तर को नियंत्रित करने में भिंडी की भूमिका की पुष्टि के लिए और अधिक प्रमाण की आवश्यकता है।

गर्भावस्था के दौरान सहायता

एक कप भिंडी में फोलेट की दैनिक आवश्यकता का 15% होता है, जो गर्भवती महिलाओं के लिए एक उपयोगी पोषक तत्व है। फोलेट तंत्रिका नलिका दोषों के जोखिम को कम करने में मदद करता है, जो विकासशील भ्रूण के मस्तिष्क और रीढ़ की हड्डी को प्रभावित कर सकते हैं।

वजन कम करने में मददगार

भिन्डी में फाइबर के मात्र प्रचुर होती है जो की वजन करने में बहुत कारगर साबित होती है

ध्यान देने योग्य जानकारी

मधुमेह रोगियों को अपने आहार में भिंडी को शामिल करने से पहले सावधानी बरतनी चाहिए। हालांकि भिंडी रक्त शर्करा को नियंत्रित करने में सहायक हो सकती है, लेकिन यह टाइप 2 मधुमेह के इलाज में अक्सर इस्तेमाल होने वाली दवा मेटफॉर्मिन के साथ परस्पर क्रिया कर सकती है।

भिंडी कैसे बनाये

आमतौर पर इसकी सब्जी बनाकर इस्तेमाल करते हैं। इसे कई तरीकों से अपने आहार में शामिल किया जा सकता है।

भिंडी में मौजूद म्यूसिलेज के कारण, गर्म करने पर यह चिपचिपी या लसलसी हो सकती है। इस चिपचिपी बनावट से बचने के

लिए, भिंडी को पैन में तेज़ आँच पर पकाएँ। आप भिंडी का अचार बनाकर भी इसकी लसलसीपन को कम कर सकते हैं। भिंडी को अपने आहार में शामिल करने के कुछ और तरीके यहाँ दिए गए हैं:

- ♣ इसे ओवन में भूनकर एक सेहतमंद नाश्ता बनाएँ।
- ♣ भिंडी को टमाटर की चटनी के साथ पकाएँ और पास्ता के ऊपर डालकर परोसें।
- ♣ नमक लगी भिंडी को हल्का सा भूने तक ग्रिल करें।
- ♣ भिंडी को लहसुन और मिर्च के साथ भूनकर भी इस्तेमाल किया जाता है।
- ♣ भिन्डी के सीड को सुखाने और भूने के बाद उसके पावडर को कॉफी के जगह पर भी इस्तेमाल कर सकते है।

निष्कर्ष

भिंडी एक आसानी से उगाई जाने वाली फसल है, जो विभिन्न प्रकार की मिट्टी और जलवायु परिस्थितियों में उग सकती है। यह प्रति इकाई क्षेत्र में उच्च उपज देती है, और इसके फल अक्सर बाजार में उच्च मूल्य प्राप्त करते हैं, जिससे यह किसानों के लिए लाभदायक फसल बन जाती है, और भिन्डी में पाई जाने वाली सभी औसधिये गुण और पोषक तत्व को ध्यान में रखते हुए हम यह कह सकते की यह हमारे दैनिक जीवन में हमारी सेहत और पाचन को सुधारने में महत्वपूर्ण योगदान देता है। इसीलिए इसकी खेती और सेवन को बढ़ावा देने न केवल किसानों की आय दोगुनी होगी साथ साथ सामान्य जन का स्वास्थ्य में सुधार होगा और पोषण सुरक्षा में सहायता मिलेगी।



रागी: कैल्शियम से भरपूर अनाज और हड्डियों का रक्षक

प्रियंका, डॉ वीनू सांगवान एवं रवीना रानी

खाद्य एवं पोषण विज्ञान विभाग

चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय हिसार

रागी एक ऐसा मोटा अनाज है जिसे हमारे देश में बहुत पुराने समय से खाया जाता रहा है। ग्रामीण क्षेत्रों में इसे मंडुआ या नाचनी भी कहा जाता है। आज के समय में लोग फिर से रागी को अपने भोजन में शामिल करने लगे हैं क्योंकि यह शरीर को अच्छा पोषण देता है। रागी की सबसे खास बात यह है कि इसमें कैल्शियम की मात्रा काफी अधिक होती है। कैल्शियम हमारे शरीर के लिए बहुत जरूरी खनिज है, जो हड्डियों और दांतों को मजबूत बनाने में मदद करता है। इसलिए रागी को अक्सर हड्डियों के लिए लाभकारी भोजन माना जाता है।

शरीर में हड्डियों का महत्व

मानव शरीर का ढांचा हड्डियों से मिलकर बना होता है। हड्डियां शरीर को सहारा देती हैं और हमें चलने-फिरने में मदद करती हैं। यदि हड्डियां कमजोर हो जाएं तो शरीर में दर्द, थकान और चलने-फिरने में परेशानी हो सकती है। हड्डियों को मजबूत रखने के लिए शरीर को सही पोषण की आवश्यकता होती है। अगर भोजन में जरूरी खनिज और पोषक तत्व न मिलें तो धीरे-धीरे हड्डियां कमजोर हो सकती हैं। इसलिए ऐसे भोजन का सेवन जरूरी है जो हड्डियों को मजबूती दे सके।

रागी में पाए जाने वाले पोषक तत्व

रागी केवल एक खनिज का स्रोत नहीं है बल्कि इसमें कई प्रकार के पोषक तत्व पाए जाते हैं जो शरीर के लिए उपयोगी होते हैं। जैसे प्रोटीन-शरीर के ऊतकों के निर्माण में मदद करता है, फाइबर- पाचन क्रिया को बेहतर बनाता है, आयरन- शरीर में खून बनाने में सहायक एवं मैग्नीशियम-शरीर की कई क्रियाओं में उपयोगी होता है। इन पोषक तत्वों के कारण रागी को संतुलित और पौष्टिक भोजन माना जाता है।

रागी हड्डियों के लिए क्यों फायदेमंद है

रागी में कई ऐसे पोषक तत्व पाए जाते हैं जो हड्डियों के स्वास्थ्य के लिए उपयोगी माने जाते हैं। यही कारण है कि इसे कई बार प्राकृतिक पोषण का अच्छा स्रोत कहा जाता है।

हड्डियों की मजबूती में सहायता

रागी में मौजूद खनिज शरीर को आवश्यक पोषण प्रदान करते हैं, जिससे हड्डियां मजबूत बनने में सहायता मिलती है। नियमित रूप से रागी का सेवन करने से शरीर को आवश्यक खनिज मिल सकते हैं।

बढ़ती उम्र के बच्चों के लिए उपयोगी

बचपन और किशोरावस्था में शरीर तेजी से विकसित होता है। इस समय बच्चों को ऐसे भोजन की जरूरत होती है जो उनके शरीर और हड्डियों के विकास में मदद करे। रागी से बने भोजन जैसे दलिया या रोटी बच्चों के लिए लाभकारी माने जाते हैं।

शारीरिक मेहनत करने वालों के लिए अच्छा भोजन

ग्रामीण क्षेत्रों में कई लोग खेतों में मेहनत का काम करते हैं। ऐसे लोगों को मजबूत शरीर और हड्डियों की आवश्यकता होती है। रागी से बना भोजन शरीर को पोषण और ताकत देने में सहायक हो सकता है।

उम्र बढ़ने पर हड्डियों की देखभाल

जैसे-जैसे उम्र बढ़ती है, कई लोगों को जोड़ों और हड्डियों से जुड़ी समस्याएं होने लगती हैं। ऐसे समय में संतुलित भोजन बहुत जरूरी हो जाता है। रागी को भोजन में शामिल करना हड्डियों के स्वास्थ्य के लिए लाभकारी माना जाता है।

निष्कर्ष

रागी एक पारंपरिक और पोषण से भरपूर अनाज है। इसमें कई महत्वपूर्ण पोषक तत्व पाए जाते हैं जो शरीर के स्वास्थ्य के लिए उपयोगी होते हैं। विशेष रूप से हड्डियों की मजबूती और शरीर की सामान्य वृद्धि के लिए इसे अच्छा भोजन माना जाता है। यदि रागी को नियमित रूप से संतुलित आहार में शामिल किया जाए तो यह शरीर को आवश्यक पोषण प्रदान कर सकता है और स्वस्थ जीवन जीने में सहायता करता है।





बागवानी और नई तकनीकों से बदली किसान पवन सरकार की किस्मत

*डा. द्वारका- अतिथि शिक्षक, कीटशास्त्र विभाग, अंजली सोनी- बीएससी कृषि

जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, कृषि महाविद्यालय, पन्ना, मध्य प्रदेश

निशा चढ़ार- एम.एससी.(बॉटनी), महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, शासकीय स्नातकोत्तर उत्कृष्ट महाविद्यालय, टीकमगढ़, मध्य प्रदेश

डॉ. प्रिंस साहू- सहायक प्राध्यापक, कीटशास्त्र विभाग, तीर्थकर महावीर कॉलेज ऑफ एग्रीकल्चर साइन्सेस, टीएमयू, मोरादाबाद, उत्तर प्रदेश

शोभाराम ठाकुर- वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी, एक्रिप परियोजना तिल फसल, कृषि महाविद्यालय, टीकमगढ़, मध्य प्रदेश

मनोज कुमार अहिरवार- कृषि विज्ञान केन्द्र प्रमुख, दमोह, मध्य प्रदेश

पन्ना जिले के बरखापुर गांव के किसान पवन सरकार ने पारंपरिक खेती से आगे बढ़कर आधुनिक तकनीकों को अपनाकर अपनी खेती और आय में उल्लेखनीय सुधार किया है। पहले वे केवल धान और गेहूं की पारंपरिक खेती करते थे, जिससे उत्पादन और आय दोनों कम थी। बाद में प्रेरणा और प्रशिक्षण प्राप्त कर उन्होंने बागवानी फसलों जैसे टमाटर, खीरा, भिंडी, मटर और आलू की खेती शुरू की तथा साथ ही गेहूं, धान और अलसी की खेती भी करते रहे। उन्होंने ड्रिप सिंचाई, जैविक खेती और मल्लिचंग जैसी नई तकनीकों को अपनाया और स्वयं द्वारा बनाई गई मशीनों का उपयोग भी किया। कृषि विभाग, कृषि विज्ञान केंद्र, पन्ना और अन्य संस्थाओं से प्रशिक्षण एवं तकनीकी सहयोग प्राप्त कर उन्होंने अपनी खेती को अधिक उन्नत बनाया। इसके परिणामस्वरूप उत्पादन बढ़ा, लागत में कमी आई और उनकी वार्षिक आय लगभग 3-4 लाख रुपये तक पहुंच गई। इस सफलता से उनके परिवार और सामाजिक जीवन में भी सकारात्मक बदलाव आया है। उनकी पत्नी और माता भी खेती में

सहयोग करती हैं और परिवार की आर्थिक स्थिति मजबूत हुई है। अब पवन सरकार भविष्य में खेती का विस्तार करने और डेयरी शुरू करने की योजना बना रहे हैं तथा अन्य किसानों को भी आधुनिक तकनीक अपनाकर जैविक खेती करने की सलाह देते हैं।

किसान का परिचय:

नाम- पवन सरकार

पिता- भवानी सरकार

माता- शोभा सरकार

पत्नी- अंचल सरकार,

उम्र- 32 वर्ष,

पता- बरखापुर, जिला- पन्ना

खेती- 2 हेक्टेयर

प्रारंभिक स्थिति

प्रारंभिक दौर में किसान केवल पारंपरिक कृषि पद्धति पर निर्भर थे और मुख्य रूप से धान तथा गेहूं जैसी फसलों की खेती करते थे। खेती पूरी तरह पारंपरिक तरीकों से की जाती थी, जिसमें आधुनिक तकनीकों या उन्नत कृषि विधियों का उपयोग बहुत कम होता था। सीमित संसाधनों



और पारंपरिक खेती के कारण उत्पादन अपेक्षाकृत कम मिलता था और खेती से होने वाली आमदनी भी बहुत अधिक नहीं थी। इसके कारण परिवार की आर्थिक स्थिति भी सामान्य बनी रहती थी। खेती में अधिक लागत लगने के बावजूद अपेक्षित लाभ नहीं मिल पाता था, जिससे भविष्य के लिए खेती को लाभकारी बनाने की आवश्यकता महसूस होने लगी।

बदलाव की सोच या प्रेरणा कहां से मिली ?

खेती में बदलाव लाने की प्रेरणा उन्हें संजित बागरे जी से मिली। उन्होंने किसान को सलाह दी कि पारंपरिक फसलों के साथ-साथ बागवानी एवं सब्जी फसलों की खेती भी अपनाई जाए, जिससे कम समय में अधिक उत्पादन और बेहतर आय प्राप्त की जा सके। इस प्रेरणा से उन्होंने खेती के स्वरूप में बदलाव करने का निर्णय लिया। इसके बाद उन्होंने टमाटर, खीरा, भिंडी, मटर और आलू जैसी सब्जी फसलों की खेती शुरू की। साथ ही पारंपरिक फसलों जैसे गेहूँ, धान और अलसी की खेती भी जारी रखी। इस प्रकार उन्होंने मिश्रित एवं विविधीकृत खेती प्रणाली को अपनाकर अपनी खेती को अधिक लाभकारी बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाया।

अपनाई गई तकनीक या नवाचार

खेती को अधिक उत्पादक और लाभकारी बनाने के लिए उन्होंने कई आधुनिक तकनीकों और नवाचारों को अपनाया। इनमें प्रमुख रूप से ड्रिप सिंचाई प्रणाली, जैविक खेती, तथा मल्लिचंग तकनीक शामिल हैं। ड्रिप सिंचाई के माध्यम से पानी की बचत के साथ-साथ पौधों को आवश्यक मात्रा में जल उपलब्ध कराया जाता है, जिससे फसल की वृद्धि बेहतर होती है। मल्लिचंग तकनीक के प्रयोग से मिट्टी की नमी बनी रहती है, खरपतवार कम होते हैं और फसल की गुणवत्ता में सुधार होता है। इसके अलावा उन्होंने अपनी समझ और अनुभव के आधार पर एक स्वनिर्मित मशीन भी तैयार की, जिससे खेत के कार्यों को अधिक सरल और कुशल तरीके से किया जा सकता है। इन तकनीकों और नवाचारों के कारण उनकी खेती अधिक आधुनिक और प्रभावी बन गई है।

प्रशिक्षण एवं तकनीकी सहयोग

किसान की सफलता के पीछे विभिन्न संस्थाओं से प्राप्त प्रशिक्षण और तकनीकी मार्गदर्शन का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उन्होंने कृषि विभाग, कृषि विज्ञान केंद्र, पन्ना तथा अन्य गैर-सरकारी संगठनों से कई प्रकार के प्रशिक्षण प्राप्त किए। इसके अतिरिक्त समाजसेवी संस्था संकल्प से भी उन्हें तकनीकी जानकारी और सहयोग मिला। कृषि विज्ञान केंद्र के विशेषज्ञों जैसे डॉ. पी. के. सिंह (सीनियर वैज्ञानिक), डॉ. आर. के. शुक्ला, डॉ. आर. पी. सिंह तथा पी. के. श्रीवास्तव (उद्यानिकी

प्रमुख) से उन्हें उन्नत कृषि तकनीकों, सब्जी उत्पादन, पौध प्रबंधन और आधुनिक खेती के तरीकों के बारे में मार्गदर्शन प्राप्त हुआ। इन प्रशिक्षणों के माध्यम से उन्होंने खेती के नए-नए तरीके सीखे और उन्हें अपने खेतों में सफलतापूर्वक लागू किया।

उत्पादन, लागत और आय में बदलाव

प्रारंभिक समय में पारंपरिक खेती के कारण उत्पादन अपेक्षाकृत कम मिलता था, जबकि लागत अधिक होने के कारण शुद्ध आय बहुत सीमित रहती थी। लेकिन जब उन्होंने आधुनिक तकनीकों को अपनाया और सब्जी एवं बागवानी फसलों की खेती शुरू की, तब धीरे-धीरे उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि होने लगी। ड्रिप सिंचाई और जैविक खेती जैसी तकनीकों से खेती की लागत में भी कमी आई। परिणामस्वरूप उनकी आय में लगातार वृद्धि होती गई। वर्तमान समय में उनकी वार्षिक आय लगभग 3 से 4 लाख रुपये तक पहुंच गई है, जो पहले की तुलना में काफी अधिक है। इस प्रकार खेती अब उनके लिए एक लाभकारी व्यवसाय बन गई है।

विपणन और मूल्य संवर्धन

अपनी कृषि एवं उद्यानिकी फसलों के विपणन के लिए वे मुख्य रूप से पन्ना और सतना की कृषि मंडियों का उपयोग करते हैं। इन मंडियों में वे अपनी उपज को सीधे बेचते हैं, जिससे उन्हें उचित मूल्य प्राप्त होता है। वर्तमान में उन्होंने फसलों का प्रसंस्करण या मूल्य संवर्धन नहीं किया है, बल्कि ताजा उत्पाद के रूप में ही बाजार में विक्रय करते हैं। फिर भी विविध फसलों के उत्पादन के कारण उन्हें वर्ष भर बाजार में बिक्री के अवसर मिलते रहते हैं, जिससे आय का स्थायी स्रोत बना रहता है।

सामाजिक एवं पारिवारिक प्रभाव

खेती में मिली इस सफलता का सकारात्मक प्रभाव उनके पारिवारिक और सामाजिक जीवन पर भी पड़ा है। पहले उनका परिवार साधारण आर्थिक स्थिति में जीवन यापन करता था और उनका मकान भी कच्चा था। लेकिन खेती से आय बढ़ने के बाद उन्होंने अपना पक्का मकान बनवा लिया है, जिससे परिवार का जीवन स्तर बेहतर हुआ है। उनकी पत्नी और माँ भी खेती के कार्यों में सक्रिय रूप से सहयोग करती हैं, जिससे पारिवारिक एकता और सामूहिक प्रयास का उदाहरण सामने आता है। इसके साथ ही गांव और समाज में भी उनकी प्रतिष्ठा बढ़ी है और लोग उन्हें एक सफल एवं प्रगतिशील किसान के रूप में पहचानने लगे हैं।

सम्मान, पुरस्कार और पहचान

उनकी मेहनत और सफलता को देखते हुए उन्हें विभिन्न सरकारी कार्यक्रमों में सम्मानित किया गया है। सरकार की ओर से उन्हें



प्रमाण पत्र भी प्राप्त हुए हैं। विशेष रूप से अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस के अवसर पर उनकी माँ को कलेक्टर मैडम द्वारा सम्मानित किया गया और उन्हें प्रशस्ति पत्र प्रदान किया गया। इस सम्मान से न केवल परिवार का मनोबल बढ़ा, बल्कि उन्हें समाज में एक नई पहचान भी मिली।

भविष्य की योजनाएं

भविष्य में वे अपनी खेती को और अधिक उन्नत और विस्तारित करने की योजना बना रहे हैं। वे खेती के साथ-साथ डेयरी व्यवसाय शुरू करना चाहते हैं, ताकि आय के अतिरिक्त स्रोत विकसित किए जा सकें। इसके अलावा उन्होंने अपनी तकनीकी समझ का उपयोग करते हुए नर्सरी बेड तैयार करने के लिए एक विशेष सब्जी मशीन भी स्वयं विकसित की है। आगे वे नर्सरी उत्पादन को भी बढ़ाने की योजना बना रहे हैं, जिससे अन्य किसानों को भी गुणवत्तापूर्ण पौधे उपलब्ध कराए जा सकें।

अन्य किसान के लिए संदेश

वे अन्य किसानों को सलाह देते हैं कि खेती को केवल पारंपरिक तरीके तक सीमित न रखें, बल्कि नई-नई तकनीकों और उन्नत कृषि पद्धतियों को अपनाएं। विशेष रूप से जैविक खेती, ड्रिप सिंचाई, मल्लिचंग और विविधीकृत खेती जैसे उपाय अपनाकर खेती को अधिक लाभकारी बनाया जा सकता है। उनका मानना है कि यदि किसान मेहनत, लगन और सही तकनीकी मार्गदर्शन के साथ खेती करें, तो वे न केवल अपनी आय बढ़ा सकते हैं बल्कि दूसरों को भी रोजगार के अवसर प्रदान कर सकते हैं। उनकी सफलता यह संदेश देती है कि आधुनिक सोच और नवाचार से खेती को एक सफल और सम्मानजनक व्यवसाय बनाया जा सकता है।





प्रपंच (जाल): कीट नियंत्रण की यांत्रिक विधियां

डॉ. चंचल भार्गव

वरिष्ठ तकनीकी सहायक (पादप प्रजनन एवं अनुवांषिकी)

जवाहरलाल नेहरू कृषि विष्वविद्यालय, कृषि विज्ञान केन्द्र चंदनगांव, छिंदवाड़ा

किसानों को वर्तमान में फसल उत्पादन पर्याप्त ना मिलने का एक प्रमुख कारण फसलों में कीटों से होने वाला नुकसान है। किसान को कीट व्याधियों के आक्रमण की जानकारी तब मिलती है, जब फसलों को नुकसान होने लगता है, जबकि वास्तविकता यह है कि खेत में कीटों की सक्रियता काफी पहले से ही आरम्भ हो जाती है। आरम्भ की अवस्था में कीट आकार में छोटे व कम संख्या में होते हैं, जिसके कारण कीटों के आगमन की जानकारी किसानों को सही समय पर नहीं मिल पाती। कीटों का आक्रमण एवं फसल को क्षति अधिक होने पर ही कृषक कीटनाशकों का उपयोग करता है, जिससे फसल को पूर्ण रूप से सुरक्षित रख पाना संभव नहीं होता। प्राकृतिक एवं जैविक खेती की परिकल्पना बिना प्रकाश प्रपंच के प्रयोग के बिना अधूरी है। वर्तमान में कीटों से 20-25 प्रतिशत तक उत्पादन में कमी देखी गई है। विष्व में लगभग 300 से 350 प्रकार के कीटनाशकों का प्रयोग हो रहा है, परन्तु इन कीटनाशकों के लगातार एवं असन्तुलित उपयोग से वातावरण प्रदूषण, कीटों में प्रतिरोधक क्षमता, कृषि उत्पाद में कीटनाशकों के अवशेष जैसी गंभीर समस्यायें सामने आ रही है। ऐसी परिस्थितियों में यह आवश्यक है कि कीट नियंत्रण के ऐसे उपायों को अपनाया जावे जो सस्ते व टिकाऊ हो, साथ ही इन उपायों से

फसल में लगने वाले कीटों के आगमन की जानकारी भी मिल सके। इन प्रपंचों को खेत में फसल ना होने पर भी वर्ष भर लगाकर कीटों का निरीक्षण एवं नियंत्रण किया जा सकता है। ऐसे उपायों में विभिन्न प्रकार के प्रपंच या जाल आते हैं, जो नियंत्रण हेतु प्रयुक्त तकनीक के आधार पर भिन्न भिन्न प्रकार के होते हैं, प्रमुख व उपयोगी प्रपंच निम्न हैं -

प्रकाश प्रपंच

इस प्रपंच में प्रकाश संवेदी कीटों को किसी प्रकाश स्रोत की ओर आकर्षित कर पतले या बारीक जाल में फंसा कर नियंत्रित किया जाता है। जाल में फंसे कीटों को किसी धुन्नक रसायन से नष्ट करके जमीन में गाड़ देते हैं। ये प्रकाश प्रपंच बिजली, गैस बत्ती या लालटेन द्वारा चलाये जाते हैं। प्राचीन काल में आग लगाकर कीट - पतंगों को नष्ट करने का यह विकसित व प्रभावी स्वरूप है।

इन प्रपंचों का उपयोग 1925 से 1940 तक काफी प्रभावी व लोकप्रिय रहा, किन्तु सन् 1940 के पश्चात् डी.डी.टी., बी.एच. सी. व अन्य जहरीले कीटनाशकों के आने से इसका उपयोग धीरे - धीरे कम होता गया। परन्तु अब पुनः इस प्रभावी कीट - नियंत्रण पद्धति की ओर



कृषक आकृष्ट हो रहा है, क्योंकि यह उपाय सस्ता, टिकाऊ व पर्यावरण के अनुकूल है। प्रकाश प्रपंच मुख्यतः चार प्रकार के होते हैं:-

(अ) खुला प्रकाश प्रपंच

इस प्रकार के प्रकाश प्रपंच में बिजली का बल्ब, गैस बत्ती या लालटेन को किसी ऊँचे स्थान पर लगाकर उसके नीचे पानी से भरे बड़े व चौड़े मुँह के बर्तन (तसला, परात आदि) को रखा जाता है। पानी में मिट्टी के तेल (केरोसीन तेल) या किसी कीटनाशक की कुछ बूंदे डाल दी जाती है।

प्रकाश की ओर आकर्षित होकर, जब कीड़े पानी में गिरते हैं तो वे जहरीले कीटनाशक या मिट्टी तेल के कारण मर जाते हैं। इन प्रपंचों की संख्या लगाये गये बल्ब की तीव्रता या गैस बत्ती पर निर्भर करती है। सामान्यतः 100 वाल्ट का बल्ब प्रयोग करने पर 4 से 5 एकड़ खेत में एक खुला प्रकाश प्रपंच प्रयोग करना चाहिए।

(ब) जालीदार थैलीयुक्त प्रकाश प्रपंच

इस प्रकाश प्रपंच में बिजली के बल्ब को एक छतरीनुमा छत के नीचे लगाकर उसके नीचे एक चौड़े मुँह वाली कीप या चाड़ी लगाते हैं। कीप या चाड़ी के नीचे जालीदार थैली बाँध दी जाती है। कीट प्रकाश की ओर आकर्षित होकर बल्ब के चारों ओर उड़ते हैं तब वे कीप की पट्टियों से टकराकर कीप या चाड़ी में गिरकर नीचे बंधी जालीदार थैली में गिर जाते हैं, जो वापस बाहर नहीं निकल पाते हैं।

जाली में फंसे कीड़ों को किसी धुमक रसायन से मारकर इन्हें नष्ट कर दिया जाता है। ये प्रपंच अपेक्षाकृत सस्ते होते हैं।

(स) यान्त्रिकीय प्रकाश प्रपंच

इस प्रकार के प्रकाश प्रपंच सबसे ज्यादा लोकप्रिय हैं एवं अधिकतर उपयोग भी किया जाता है। इस प्रकाश प्रपंच में दो मुख्य भाग होते हैं -

1. कीट आकर्षित करने वाला भाग, इसे ट्रेपिंग डिवाइस भी कहा जाता है।
2. कीट एकत्र करने वाला भाग या कलेक्शन चेम्बर। ये दोनों भाग जी.आई. शीट के बने होते हैं, जिसका आकार खेतों के आकार के अनुसार घटाया या बढ़ाया जा सकता है। कीट आकर्षित करने वाले भाग में एक चौड़े मुँह की कीप या चाड़ी लगी होती है जो तीन लम्बवत् आधार से जुड़ी होती है। कीप के ऊपर एक छतरीनुमा गोल छत होती है, जो बरसात के दिनों में पानी के अंदर आने से बचाती है। इस छत के नीचे बिजली का बल्ब लगाया जाता है। यह सम्पूर्ण हिस्सा नीचे के कीट एकत्र करने वाले भाग से जुड़ा रहता है। कीट



एकत्र करने वाले चौकोर बाक्स के अंदर कोई भी जहरीला धुमक या दवा युक्त घोल रखते हैं ताकि कीड़ों के अंदर गिरते ही नष्ट हो जावें।

इस तरह के प्रकाश प्रपंच अपेक्षाकृत मंहगे होते हैं। इन प्रपंचों में मरकरी बल्ब लगाया जाता है, जिससे कीट अधिक मात्रा में आकर्षित हो। जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर द्वारा विकसित प्रपंच में 160 वाट का मरकरी बल्ब लगाकर निरीक्षण करने से काफी अच्छे परिणाम प्राप्त हुए हैं।

(द) विद्युत प्रपंच-

इस प्रकार के प्रकाश प्रपंच में बल्ब के बाहर पतली जाली लगी होती है, जाली में हल्का विद्युत प्रवाह होता है। प्रकाश ओर कीट आकर्षित होने पर इन जालियों से टकराते हैं, और हल्के विद्युत करंट से मर जाते हैं। इस प्रकार के प्रपंच मनुष्यों के लिये हानि रहित होते हैं, अर्थात् करंट लगने का भय नहीं रहता। इनका उपयोग बड़े फार्म हाऊस या सार्वजनिक स्थानों पर अधिक होता है। वर्तमान में सौर ऊर्जा से चलने वाले प्रकाश प्रपंच काफी लोकप्रिय हो रहे हैं।

प्रकाश प्रपंच से नियंत्रित होने वाले कीट

चना, मटर, गेहूँ, धान, कपास, गन्ना, सोयाबीन के पत्ती खाने वाले कीट, सूर्यमुखी एवं अन्य फसलों के प्रमुख कीट। इसके अलावा सागौन के पत्ती खाने वाले कीट।



फेरोमेन प्रपंच

यह एक साधारण संरचना वाला साधन है। इसमें एक प्लास्टिक की प्लेटनुमा गोल छतरी होती है। इसके नीचे की ओर बीच में एक उभार या तार लगा होता, जिसमें रसायनयुक्त (फेरोमेन) रबर की घुण्डी (सेप्टा) लगाया जाता है। यह रसायन विशेष प्रजाति के नर कीटों को आकर्षित करने की क्षमता रखता है। इस प्लेट के नीचे प्लास्टिक की एक लम्बी थैली लटकी होती है। इस थैली का निचला हिस्सा बांध दिया जाता है। ऊपर वाली छतरी फेरोमेन को धूप, बरसात आदि से बचाने का काम करती है।

फेरोमेन क्या है?

कुछ प्रकार के कीड़े अपने शरीर से सूक्ष्म मात्रा में तरल पदार्थ (रसायन) निकालते हैं, जिसकी गंध से लगभग दो किलोमीटर की दूरी से भी इस प्रजाति के नर कीट संगमन (मिलन) हेतु आकर्षित होते हैं। इस सूक्ष्म तरल पदार्थ का प्रयोग कीट नियंत्रण व कीट सर्वेक्षण के लिये फेरोमेन के रूप में उपयोग किया जाता है। अभी तक 40 से अधिक जातियों के कीटों को नियंत्रित करने के लिये फेरोमेन की पहचान की जा चुकी है, जो कीट नियंत्रण हेतु बाजार में उपलब्ध है।

फेरोमेन एक कार्बनिक रसायन है इस रसायन को प्लास्टिक की घुण्डी में प्रयोग किया जाता है जिसे सेप्टा या ल्योर भी कहा जाता है। इसकी गंध से ही नर कीट जाल में फंस जाते हैं, जिससे इन कीटों का प्रजनन नहीं हो पाता है, फलस्वरूप इस प्रजाति की संख्या वृद्धि कक जाती है, और कीट नियंत्रण में सहायक होती है।

किस कीट के लिये उपयोग करें?

चने की इल्ली, तम्बाकू की इल्ली, कपास की गुलाबी सूड़ी, भिण्डी की चितकबरी इल्ली एवं ज्वार, मक्का व गन्ने का तना छेदक आदि। प्रत्येक कीट के लिये अलग - अलग फेरोमेन सेप्टा होता है, अतः कीटों के संभावित आक्रमण के अनुसार चुनाव कर प्रयोग करना चाहिए।

कैसे लगायें?

फेरोमेन ट्रेप चयनित फसल में बांस या लकड़ी के सहारे फसल से 2 से 3 फीट की ऊँचाई पर लगाना चाहिए। प्रति एकड़ इसकी संख्या 3



से 4 रखनी चाहिए तथा दो प्रपंचों के बीच लगभग 30 से 40 मीटर का अंतर रखना चाहिए।

लाभ

1. इसके प्रयोग से रसायनों की कीमत व छिड़काव हेतु मजदूरी की बचत होती है।
2. समन्वित कीट नियंत्रण का यह एक मुख्य आधार है।
3. वातावरण को प्रदूषण से बचाता है।
4. हानिकारक नहीं होने के कारण इसका प्रयोग आसान है।
5. फसल के सिर्फ हानिकारक कीड़ों को ही नियंत्रण करता है, जिससे अन्य लाभदायक कीट मरने से बच जाते हैं।
6. नर कीटों को पकड़ने से मिलन के बाद मादा द्वारा दिये जाने वाले असंख्य अण्डों से निकलने वाले हानिकारक कीटों को नुकसान के पहले ही रोक दिया जाता है।
7. कीट - नियंत्रण की यह विधि सस्ती एवं सुगम है।

सावधानियाँ

1. प्रत्येक सेप्टा या ल्योर को 21-24 दिनों में बदल देना चाहिए।
2. प्रयोग से पहले सेप्टा को ठण्डे स्थान पर संग्रहित करें।
3. इस्तेमाल के बाद सेप्टा को नष्ट कर दें।
4. प्रतिदिन सुबह प्लास्टिक थैली को खाली करें।

चिपचिपे व रंग वाले प्रपंच

फसलों को नुकसान पहुँचाने वाले कीट ऐसे होते हैं जो रंग संवेदी होते हैं और किसी रंग विशेष की ओर आकर्षित होते हैं। इनके निर्माण के लिये लकड़ी या लोहे के चौकोर छोटे टुकड़ों पर चिपचिपा पदार्थ जैसे ब्रीस, तेल आदि लगाकर कीटों को आकर्षित किया जाता है।



ये चौकोर टुकड़े विभिन्न रंगों के होते हैं। जैसे- अरहर (तुअर) की फल की मक्खी सफेद रंग की ओर आकर्षित होती है, कपास की सफेद मक्खी पीले रंग की ओर आकर्षित होती है। इसी प्रकार विभिन्न चिपचिपी सतहों पर अनेकों कीट आकर्षित होकर चिपक जाते हैं, एवं नष्ट हो जाते हैं।

जहरीला प्रपंच

अधिकांश वयस्क कीट गंध संवेदी होते हैं, इन कीटों को इस प्रपंच की ओर गंध से आकर्षित कर, जहरीले कीटनाशक के सम्पर्क में



लाकर नियंत्रित किया जाता है। इस प्रपंच को बनाने के लिये किसी चौड़े मुंह की प्लेट, कटोरी या मिट्टी का बड़ा दिया लें। इस चौड़े मुंह के किसी भी बर्तन में गुड़ या राब 500 ग्राम, मेलाथियान (कीटनाशक) 50 मि.ली. पानी। लीटर एवं सिरका 50 मि.ली. लेकर इन्हें अच्छी तरह मिलाकर लकड़ी या बांस के स्टैण्ड में जमीन से 4 से 6 फीट ऊपर रखें।

इस जहरीले प्रपंच को डिब्बे में भरकर बड़े फल बागों में पेड़ पर भी टांग सकते हैं। तैयार प्रपंच से आम, नींबू, संतरा एवं बेर के फल में लगने वाले कीट, एवं कट्टू वर्गीय सब्जियों में लगने वाले कीटों को नियंत्रित किया जा सकता है। धान, कपास, चना, गन्ना, सरसों आदि के अनेक कीट इस प्रपंच से नष्ट किये जा सकते हैं।

इस प्रकार के जहरीले प्रपंच एक एकड़ में 3 से 4 समान दूरी पर लगाना चाहिए। जहरीला घोल जब कीटों से भर जावे तब इस घोल को

विभिन्न प्रपंचों की अनुमानित लागत

क्र.	नाम	आकार या मात्रा	लागत (रुपये में)
1	खुला प्रकाश प्रपंच	बल्ब (100 वाट) गैस बत्ती	₹. 30 से 40 ₹. 400 से 500
2	जालीदार थैलीयुक्त प्रकाश-प्रपंच	बल्ब (100 वाट) (कीप का व्यास 1 से 1.5 फीट)	₹. 250 से 300
3	यांत्रिकीय प्रकाश प्रपंच	अ. बल्ब (100 वाट) कीप 1 से 1.5 फीट संग्रहण बॉक्स 1.5 × 1.5 × 2 फीट ब. 160 वाट का मरकरी बल्ब संग्रहण बॉक्स 2 × 2 × 5 फीट	₹. 350 से 400 ₹. 1000 से 1200
4	फेरोमेन प्रपंच	एक नग छतरी (प्रपंच) सेप्टा (प्रति नग)	₹. 15 से 20 ₹. 15 से 20
5	चिपचिपे व रंग वाले प्रपंच	3 × 2 फीट के	₹. 150 से 200

बिजली व्यय अतिरिक्त होता है।



छानकर पुनः प्रयोग कर सकते हैं, किन्तु एक बार तैयार घोल का प्रभाव 20 से 25 दिनों तक ही रहता है, इसलिये सामान्यतः प्रतिमाह नया घोल बनाकर बर्तन में पुनः भरना चाहिए।

इन सभी प्रपंचों द्वारा निम्नलिखित क्रमबद्ध जानकारियाँ प्राप्त करने में सफलता मिलती है, जो कि समन्वित कीट नियंत्रण के लिये भी अत्यंत महत्वपूर्ण है।

1. इसके द्वारा यह पता लगाने में सहायता मिलती है कि किन किन क्षेत्रों में कौन-कौन से कीट अधिक सक्रिय है, साथ ही उनके जीवन चक्र तथा प्रसार की जानकारी भी प्राप्त की जा सकती है।
2. विभिन्न कीटों की सक्रियता का पूर्वानुमान लगाया जा सकता है।
3. विभिन्न कीटों की “आर्थिक क्षति स्तर अवस्था” का पता लगाने में भी सहायता मिलती है।





जैविक मलच से खरपतवार प्रबंधन : एक परिदृश्य

डॉ० सुनील कुमार मंडल

सहायक प्राध्यापक -सह- वैज्ञानिक,

क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, झंझारपुर, मधुवनी, बिहार

डॉ० राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, समस्तीपुर, बिहार

जैविक मलच वार्षिक खरपतवारों को दबा सकते हैं और अन्य महत्वपूर्ण लाभ प्रदान करते हैं, (कार्बनिक पदार्थ, पोषक तत्व, नमी संरक्षण, मृदा संरक्षण और मृदा तापमान में संतुलन) इसके नुकसानों में लागत और श्रम, बारहमासी खरपतवारों पर सीमित प्रभाव, मृदा का देर से गर्म होना, और खरपतवार के बीज ले जाने और कीटों को आश्रय देने की क्षमता भी शामिल है।

घास, पुआल और ताजा कटी हुई चारा या आवरण फसलों सबसे बहुमुखी और व्यापक रूप से उपयोग की जाने वाली जैविक मलच में से हैं। उचित दर पर इस्तेमाल करने पर ये खरपतवार के अंकुरण और उभार को रोक सकते हैं, लगाने में काफी आसान हैं, मिट्टी की नमी के वाष्पीकरण से होने वाले नुकसान को कम करते हैं और वर्षा को मिट्टी तक पहुँचने देते हैं, और अन्य लाभ भी प्रदान करते हैं। खेत में बाहर के खेतों से घास के साथ खरपतवार के बीज या शाकनाशी अवशेषों को लाने से बचने के लिए सावधानी बरतने की आवश्यकता है। पेड़ों की पत्तियाँ, छिली हुई झाड़ियाँ और अन्य वन-आधारित मलच अक्सर सब्जियों और अन्य बारहमासी फसलों के लिए फायदेमंद होते हैं, लेकिन कई बड़े पैमाने पर खरपतवार नियंत्रण के लिए ये एक किफायती

विकल्प नहीं हो सकते हैं। प्रस्तुत लेख में विभिन्न प्रकार की जैविक मलच की सामग्रियों के गुणों, उपयोगों, लाभों और नुकसानों का गहराई से चर्चा की गयी है।

जैविक मलच सामग्री में अनाज का भूसा, ताजा या पुराना घास की कतरनें, ताजा कटा हुआ चारा या आवरण फसलें, छिले हुए झाड़ियाँ, लकड़ी की छीलन, पेड़ों के पत्ते, कपास की टँकी का कचरा, चावल या कुट्टू के छिलके और अन्य फसल अवशेष शामिल हैं। जैविक बागवानी में घास और भूसा सबसे व्यापक रूप से इस्तेमाल किए जाने वाले जैविक मलच हैं। आवरण फसलों को परिपक्व होने (फूल आने) तक उगाया जा सकता है, यंत्रवत् नष्ट किया जा सकता है, और बिना जुताई वाली फसलों के लिए जैविक मलच प्रदान करने के लिए मिट्टी की सतह पर छोड़ा जा सकता है। पत्ती की सड़ी हुई पत्तियाँ (सड़े हुए पेड़ के पत्ते), कम्पोस्ट और पुरानी खाद का भी जैविक मलच के रूप में उपयोग किया जाता है, हालाँकि उनकी भुरभुरी बनावट अन्य सामग्रियों की तरह खरपतवार के पौधों के लिए उतनी प्रभावी बाधा नहीं बन सकती है।

जैविक मलच कई तरीकों से खरपतवारों को दबाते हैं। सबसे पहले, वे प्रकाश को रोककर, मिट्टी के तापमान को कम करके, और दिन-



रात के तापमान में उतार-चढ़ाव को कम करके बीज अंकुरण उत्तेजनाओं को रोकते हैं। परिणामस्वरूप, खुली मिट्टी की तुलना में मलच के नीचे खरपतवार के बीज कम अंकुरित होते हैं। दूसरा, मलच उन खरपतवारों के उगने में विशेषरूप से बाधा डालता है जो अंकुरित होते हैं। यदि मलच इतना मोटा है कि प्रकाश ढके हुए पौधों तक नहीं पहुँच पाता, तो वे अंततः मर जाते हैं। तीसरा, कुछ मलच सामग्री, जैसे अनाज का भूसा और ताजा कटा हुआ चारा (ज्वार-सुडानघास), प्राकृतिक पदार्थ छोड़ते हैं जो लगाने के बाद कई हफ्तों तक खरपतवार के पौधों की वृद्धि को रोकते हैं, इस प्रक्रिया को एलेलोपैथी कहा जाता है। अंत में, जैविक मलच मिट्टी की नमी को संरक्षित करने के साथ-साथ मिट्टी के तापमान को नियंत्रित करके फसल की वृद्धि और खरपतवारों के विरुद्ध प्रतिस्पर्धात्मकता को बढ़ा सकता है।

पुआल और अन्य जैविक मलच बीजों से अंकुरित होने वाले अधिकांश खरपतवारों को प्रभावी रूप से उगने से रोकते हैं, हालाँकि घास और बड़े बीज वाले चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों को छोटे बीज वाले चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों की तुलना में अधिक मोटाई वाली मलच सामग्री की आवश्यकता हो सकती है, जिनके अंकुर अधिक नाजुक होते हैं, परन्तु मूलवृत्तों, प्रकंदों, कंदों या अन्य वानस्पतिक प्रजनकों से उत्पन्न होने वाले बारहमासी खरपतवार अधिकांश जैविक मलच में प्रवेश कर सकते हैं।

मलच उपयोग के समय जो खरपतवार पहले ही उग चुके हैं, उन्हें मलच बिछाने से पहले नष्ट किया जाना चाहिए या कुदाल से उखाड़ दिया जाना चाहिए; केवल स्थापित खरपतवारों पर जैविक सामग्री बिछाना कम प्रभावी होता है। एक बार जब खरपतवार मलच से बाहर निकल जाते हैं, तो उन्हें फसल के समान ही मलचिंग के लाभ मिलेंगे और वे तेजी से बढ़ेंगे।

आमतौर पर, कुछ खरपतवार अंततः जैविक मलच के माध्यम से उग आते हैं। शकरकंद और बीन जैसी तेजी से बढ़ने वाली, छतरीनुमा फसलें अक्सर इन देर से उगने वाले खरपतवारों को छाया प्रदान करती हैं। प्याज और गाजर जैसी धीमी गति से बढ़ने वाली, कम प्रतिस्पर्धी सब्जियों में, संतोषजनक खरपतवार नियंत्रण बनाए रखने के लिए हाथ से निराई या अतिरिक्त मलच लगाने की आवश्यकता हो सकती है।

मलचिंग सामग्रियों का विवरण:

1. सूखी घास

बागवानी फसलों को मलच करने के लिए अक्सर सूखी घास का उपयोग किया जाता है, जहाँ प्रमुख कृषि पद्धतियों में सूखी घास का उत्पादन शामिल है और पुरानी सूखी घास, भूसे और अन्य सामग्रियों की

तुलना में अधिक सस्ती होती है। सूखी घास के कुछ नुकसान हैं और इसे सावधानी से चयन और उपयोग करना चाहिए। हालाँकि, छोटे पैमाने पर रोपण में इसका उपयोग करना काफी आसान है और यह आमतौर पर मिट्टी की गुणवत्ता और फसल उत्पादन के लिए फायदेमंद होता है। लगभग 3-4 इंच मोटी सूखी घास की मलच होनी चाहिए। खरपतवार के अंकुरों, विशेष रूप से छोटे बीज वाले चौड़ी पत्ती वाले वार्षिक पौधों के वृद्धि एवं विकास को कम करते हैं।

प्रमुख विशेषताएँ :

- 🌳 लाभकारी जीवों, जैसे कि ज़मीनी भृंग और अन्य खरपतवार की बीज उपभोक्ताओं के लिए आवास प्रदान करते हैं।
- 🌳 हवा और वर्षा को मिट्टी तक पहुँचते हैं।
- 🌳 गर्म मौसम के दौरान मिट्टी का तापमान मध्यम रखते हैं।
- 🌳 मिट्टी की नमी को बनाए रखते हैं।
- 🌳 मिट्टी के जमने और कटाव को रोकते हैं।
- 🌳 कद्दू, खरबूजे और अन्य फल देने वाली फसलों को मिट्टी के सीधे संपर्क से दूर रखते हैं, ताकि ये साफ रहें।
- 🌳 कार्बनिक पदार्थ और धीमी गति से निकलने वाले पोषक तत्व, विशेष रूप से पोटेशियम की पर्याप्त मात्रा को बढ़ाते हैं।

कुछ महत्वपूर्ण नुकसान भी हैं :

- 🌳 यह ज्यादातर बारहमासी खरपतवारों को नहीं रोक पाते हैं।
- 🌳 घास में खरपतवार के बीज या शाकनाशी के अवशेष हो सकते हैं।
- 🌳 यह स्लग, घोंघा और अन्य कीटों को आश्रय दे सकता है।
- 🌳 यह मिट्टी को बहुत ठंडा या गीला रख सकता है, जिससे फसल की वृद्धि या पारिपक्वता धीमी हो सकती है।
- 🌳 यह मिट्टी की विकिरणित उष्मा को फसल के पत्तियों तक पहुँचने से रोककर पाले से होने वाले नुकसान को बढ़ा सकता है।
- 🌳 साल-दर-साल इस्तेमाल करने पर मिट्टी में पोटेश का स्तर अत्यधिक बढ़ सकता है।

सभी घास एक जैसी नहीं होती है किसी घास में नाइट्रोजन और फॉस्फोरस कम होता है जबकि पोटेशियम ज्यादा होता है, और यह दलहनी घास की तुलना में ज्यादा टिकाऊ और खरपतवार-रोधी होती है। अपने उच्च कार्बन-नाइट्रोजन अनुपात के कारण घास को कभी-कभी मिट्टी के नाइट्रोजन को बाँधने वाला पाया गया है। हालाँकि, ऐसा तब होने की सबसे ज्यादा संभावना होती है, जब घास को मिट्टी में मिला दिया जाता है, न कि तब, जब इसे गीली घास के रूप में सतह पर डाला जाता है। घास-फलीदार पौधों का मिश्रण (टिमोथी-अल्फाल्फा, फेस्क्यू-लाल



तिपतिया घास या राई-बालों वाली वेच) अधिक संतुलित गीली घास प्रदान करता है, जो मृदा के जीवन और फसलों को धीमी गति से पोषक तत्व प्रदान करता है, तथा खरपतवार दमन के लिए कई सप्ताह तक पर्याप्त समय तक बना रहता है।

ताजा घास बिछाना ज्यादा सुखद होता है, लेकिन पुरानी एवं सड़ी हुई घास की तुलना में इसमें ज्यादा मात्रा में खरपतवार के बीज होने की संभावना होती है। घास की दूसरी या तीसरी कटाई में खरपतवार के बीज होने की संभावना खास तौर पर ज्यादा होती है। घास के गड्डों या रोल को एक या दो साल तक बारिश में छोड़ देने से खरपतवार के बीजों की जीवनक्षमता कम हो जाती है, लेकिन फफूंद से संक्रमित घास खराब और संभालने में खतरनाक हो सकती है और यह उतनी साफ़ या लंबे समय तक टिकने वाली मल्व प्रदान नहीं करती। परन्तु एक बेहतर उपाय यह है कि खेत में ही मल्व घास उगाकर काटी जाए, और ध्यान रहे कि जीवनक्षमता बीज बनने से पहले ही मल्व फसल को काट दिया जाए। मल्व घास बारहमासी चारे या वार्षिक आवरण फसलों (राई, ज्वार, सूडानघास, आदि) से प्राप्त की जा सकती है। ध्यान रहे कि किसी दिए गए खेत से बार-बार घास की कटाई करने से मिट्टी के पोषक तत्व, खास तौर पर फास्फोरस, पोटेशियम और कैल्शियम कम हो सकते हैं। फसल-चक्र में वार्षिक या बारहमासी मल्व फसलों को उन सब्जियों के साथ बारी-बारी से शामिल करने से, जिन्हें मल्व प्राप्त होता है, घास की फसल में पोषक तत्वों की कमी को कम करके बेहतर पोषक तत्वों के संतुलन को बढ़ावा मिल सकता है, जबकि बार-बार मल्व के प्रयोग से संभावित पोटेशियम की अधिकता से बचा जा सकता है।

उदाहरण के लिए छोटे पैमाने पर उच्च मूल्य वाली फसल के आधे एकड़ के लिए, हाथ से घास डालना सबसे उपयुक्त है। कुछ किसानों ने छोटी आयताकार गांठों में घास या भूसे को यांत्रिक रूप से डालने के लिए बेल चॉपर का इस्तेमाल किया है। बड़े रोल (गोल गांठें) आमतौर पर टमाटर जैसी दूर-दूर लगी फसलों की पंक्तियों के बीच खोले जाते हैं, इस काम के लिए आमतौर पर लगभग 4.50 किलोग्राम के रोल (गील गांठें) को फसल की पंक्ति की शुरूआत में रखने के लिए एक ट्रैक्टर और उसे खोलने के लिए दो लोगों की आवश्यकता होती है।

कई किसानों ने फसल कटाई के लिए फ्लेल चॉपर और चारा गाड़ी का इस्तेमाल करके और फिर ताजा कटे चारे को गोड़ी से उतारकर, उसे धीरे-धीरे फसल की पंक्तियों में खींचकर, खेत में कटाई और मल्व के इस्तेमाल को सुव्यवस्थित किया है, अन्य उत्पादक, सब्जियों और आवरण फसलों (जैसे, आलू और ज्वार-सूडान घास) की बारी-बारी से पंक्तियाँ उगाते हैं, और समय-समय पर आवरण फसल की कटाई करते हैं

और कतरनों को सब्जियों की पंक्ति में मल्व के रूप में डाल देते हैं। इस दृष्टिकोण से घास को सुखाने, गड्ढर बनाने और भंडारण करने में लगने वाले श्रम और लागत की बचत होती है। हालाँकि, ताजा घास या फलीदार पौधों की “हरी चॉप” के इस्तेमाल के बाद कुछ समय के लिए कुछ मृदाजनित रोगाणुओं को बढ़ावा देने की सूचना मिली है; इसलिए, पूरे खेत में इस्तेमाल से पहले, ताजा कटे चारे की मल्व का प्रत्येक फसल के लिए एक छोटे से क्षेत्र में परीक्षण किया जाना चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण के लिए गीली घास के सर्वाधिक उपयोग के लिए कुछ महत्वपूर्ण सुझाव :

- ✓ यदि व्यावहारिक हो तो खेत में ही घास उगाकर उसका उपयोग करना चाहिए।
- ✓ खरीदने से पहले, खरपतवार के बीजों और शाकनाशी अवशेषों के लिए खेत के बाहर घास के स्रोतों की जाँच कर लेना चाहिए।
- ✓ जब फसलें अच्छी तरह से स्थापित हो जाएँ और मिट्टी का तापमान और नमी उगाई जा रही फसलों के लिए अधिकतम हो, तब गीली घास व्यवहार करना चाहिए (अपवाद : पतझड़ में बोए गये लहसून को रोपण के तुरन्त बाद गीली घास लगा दी जाती है)।
- ✓ गर्म धूप वाले दिन की शुरूआत में कुदाल चलाएँ या जुताई करना चाहिए। उखड़े हुए खरपतवारों को मरने के लिए 12-36 घंटे प्रतीक्षा करें, फिर गीली घास बिछा देना चाहिए (यह सभी जैविक गीली घास पर लागू होता है)।
- ✓ अधिकांश खरपतवारों के अंकुरों को दबाने के लिए पर्याप्त घास का उपयोग करना चाहिए (लगभग 3-4 इंच या 5-10 टन प्रति एकड़)।
- ✓ मिट्टी के पोषक तत्वों के स्तर की निगरानी विशेष रूप से करना चाहिए।
- ✓ सब्जियों को बिना गीली घास वाली फसलों या घास उत्पादन के साथ बदलना चाहिए।

2. पुआल/भूसा :

पुआल, जिसे परिपक्व अनाज की कटाई के बाद बचे डंठलों और अन्य अवशेषों के रूप में परिभाषित किया गया है, बनावट, मृदा संरक्षण और नमी संरक्षण, खरपतवार नियंत्रण और उपयोग विधियों में घास के समान होता है। पुआल घास से इस मायने में भिन्न होते हैं क्योंकि निम्नउल्लेखित विशेषताएँ होती हैं।

प्रभाव विशेषताएँ :

कार्बन-नाइट्रोजन अनुपात अधिक होता है।



यह एक स्वच्छ, अधिक स्थायी मल्ल प्रदान करता है जो धीरे-धीरे विघटित होता है, और कद्दू तथा अन्य लता वाली फसलों के फलों को साफ रखने में अधिक प्रभावी होता है।

पुआल में अनाज की फसल के बीज हो सकते हैं, लेकिन अन्य खरपतवार के बीज होने की संभावना कम होती है।

इसमें पोटाश का स्तर कुछ कम होता है और पोटाश का उत्सर्जन भी धीमी गति से होता है।

इसका रंग हल्का होता है और यह अधिक परावर्तक होता है, इसलिए यह घास की तुलना में मिट्टी को अधिक ठंडा कर सकता है।

चूँकि भूसे से घास की तुलना में गंभीर नई खरपतवार की समस्याएँ उत्पन्न होने की संभावना बहुत कम होती है, इसलिए अनाज उत्पादन क्षेत्रों में या उनके आस-पास स्थित जैविक बागवानी किसान, जहाँ भूसा या पुआल उपलब्ध और किफायती है, अक्सर घास की बजाय भूसे व पुआल को प्राथमिकता देते हैं। भूसे का उच्च कार्बन-नाइट्रोजन का अनुपात गीली घास से नाइट्रोजन के अधिक उत्सर्जन को चालू वर्ष की फसल में रोकता है, लेकिन आमतौर पर मिट्टी में नाइट्रोजन के जमाव का कारण नहीं बनता, जब तक कि गीली घास मिट्टी के ऊपर रहती है और उसे जोता नहीं जाता।

भूसे के नीचे की मिट्टी का नाटकीय रूप से ठंडा होना, फसल की वृद्धि में देरी कर सकता है। हालाँकि, यह आलू जैसी ठंडे मौसम की फसलों के लिए फायदेमंद हो सकता है, जिनमें कंद की वृद्धि 47.5 डिग्री सेंटीग्रेड से अधिक मिट्टी के तापमान के कारण वाधित होती है और गर्मियों के मौसम में टमाटर के जड़ क्षेत्र में 47.5-66.25 डिग्री सेंटीग्रेड तापमान पर पोषक तत्व अवशोषण के साथ उतपादन प्रदर्शित करता है एवं उच्च तापमान पर तनावग्रस्त हो जाता है। इस प्रकार गर्मी के मौसम में प्रायः प्लास्टिक के मल्लिंग की तुलना में जैविक मल्लिंग में बेहतर प्रदर्शन करता है परन्तु चमकीला, परावर्तक पुआल, पंक्ति आवरण के नीचे फसल की पत्तियों का तापक्रम को बढ़ा सकता है, जिसके परिणामस्वरूप फसल को नुकसान हो सकता है तथा पाले से होने वाले नुकसान को भी बढ़ा सकता है।

3. वृक्षों के पत्ते:

शरद ऋतु में प्राकृतिक रूप से गिरने वाले वृक्ष के पत्तियों का उपयोग कभी-कभी सब्जी उत्पादन में गीली घास के रूप में किया जाता है। ये पत्तियाँ कैल्शियम और सूक्ष्म पोषक तत्वों से भरपूर होते हैं, इनमें नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटेशियम की अल्प से मध्यम मात्रा होती है और धीरे-धीरे सड़ कर पत्तियों की खाद बनाते हैं, जो एक ह्यूमस जैसा पदार्थ है और बागवानी विशेषज्ञों के द्वारा मूल्यवान माना जाता है। लाखों

उपनगरीय निवासी पतझड़ के पत्तियों को निपटान के लिए एकत्रित करते हैं और अधिक संख्या में किसान व अन्य उद्यमी गीली घास या खाद बनाने के लिए पत्तियों का उपयोग करते हैं। पत्तियों का उपयोग अक्सर जामुन और कुछ अन्य बारहमासी पौधों के लिए किया जाता है जो कुछ अम्लता को सहन करते हैं या पसंद करते हैं।

पलवार के रूप में पेड़ों की पत्तियों के नुकसान :

गीले होने पर नीचे की ओर गठरी बन जाना, जिससे मिट्टी गीली या हवा रहित हो जाती है।

सूखने पर हवा में उड़ जाने, या नई फसल के पौधों पर उड़कर उन्हें दबा देने की प्रवृत्ति।

अधिक श्रम-जागत और बड़े पैमाने पर संभव नहीं।

नगरपालिका के पत्तियों या यार्ड के कचरे में डिब्बे, कांच, प्लास्टिक, आदि की उपस्थिति की संभावना।

प्रमुख विशेषताएँ :

पेड़ों के पत्तियों की खाद (पत्तियों को 1-2 साल तक भुरभुरा होने तक रखा जाता है) बनाकर भी उपयोग किया जा सकता है, जो मिट्टी सुधार या गमले के मिश्रण का एक उत्कृष्ट घटक है। चिपके हुए झाड़, लकड़ी की छीलन, छाल।

इन वानिकी उत्पाद मल्ल का उपयोग अक्सर बारहमासी फसलों जैसे जामुन और सजावटी बारहमासी पौधों पर किया जाता है, जिनमें से कई माइकोराइजा और इन पदार्थों के द्वारा समर्थित अन्य लाभकारी सूक्ष्मजीवों से भरपूर थोड़ी अम्लीय मिट्टी पसंद करते हैं। ये घास या भूसे की तुलना में मोटे और अधिक घने होते हैं, खरपतवारों को दबाने के लिए प्रति एकड़ अधिक मात्रा की आवश्यकता होती है और अधिकांश बड़े पैमाने पर प्रयोगों के लिए किफायती नहीं हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त विशेषताओं में शामिल है :

- ❖ उच्च कार्बन : नाइट्रोजन अनुपात।
- ❖ अपेक्षाकृत दीर्घजीवी।
- ❖ ताजा होने पर ऐलेलोपैथिक गुण, विशेष रूप से अखरोट और कुछ शंकुधारी वृक्षों (नरम लकड़ी)।
- ❖ कैल्शियम, सूक्ष्म पोषक तत्व और नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटेशियम की अल्प मात्रा प्रदान करते हैं।
- ❖ पूर्णतः विघटित होने पर स्थिर ह्यूमस का निर्माण करते हैं। लकड़ी आधारित या छाल वाली गीली घास को फसल की पत्तियों के पास लगाने से पहले कम से कम एक साल तक बाहर रखना



चाहिए, ताकि फसल की वृद्धि में संभावित ऐलीलोपैथिक अवरोध को कम किया जा सके। हालाँकि, ताजा छिले हुए छाल क्यारियों के बीच के रास्तों या कतारों में खरपतवारों को दबाने के लिए उपयोगी हो सकते हैं। एक किसान को गीली घास के रूप में 1-2 ससन पुराने दृढ़ (सक्त) लकड़ी के चिप्स और अमरूद के लिए मिट्टी सुधारक के रूप में 8-11 साल पुराने दृढ़ लकड़ी के चिप्स के साथ उत्कृष्ट परिणाम मिले हैं।


लकड़ी के चिप्स और छाल वाली गीली घास को पेड़ों या झाड़ियों के पास नहीं रखना चाहिए, क्योंकि इससे फफूंदजनित रोगों का विकास हो सकता है। गीली घास की गहराई के आधार से 6-12 इंच के भीतर और उसके आस-पास 1-2 इंच तक सीमित रखने के उपरान्त पुनः गहराई को और दूर तक बढ़ाया जाना चाहिए।


4. चूरा :


चूरा रासायनिक रूप से अन्य लकड़ी के उत्पादों के समान ही होता है, लेकिन चूँकि यह बहुत बारीक होता है, इसलिए मल्लिचंग सामग्री के रूप में इसके निम्नलिखित नुकसान भी होते हैं :


चूरा के संभावित नुकसान :

यह नीचे की ओर गूँथ जाता है और मिट्टी को गीला और वायुरहित रखता है।

 मिट्टी में नाइट्रोजन के छोटे कण या घुलनशील कार्बाहाइड्रेट रिसने पर यह मिट्टी को शक्त व बाँध सकता है।

 कुछ समय के लिए फसलों के लिए काफी ऐलीलोपैथिक हो सकता है।

 कुछ खरपतवार इसमें प्रवेश कर सकते हैं, और हवा से उड़ने वाले खरपतवार के बीजों के लिए एक अच्छा अंकुरण माध्यम प्रदान कर सकते हैं।

 ढलान वाले खेतों में भारी बारिश से यह बह सकता है।

5. कम्पोस्ट :

कुछ उत्पादक कम्पोस्ट का उपयोग गीली घास के रूप में करते हैं, हालाँकि प्रभावी खरपतवार नियंत्रण के लिए आवश्यक मात्रा आर्थिक रूप से व्यवहार्य नहीं हो सकती है। एक अध्ययन के अनुसार 1.5-2.0 इंच मोटी परत पत्ती का कम्पोस्ट ने खरपतवारों को उतनी अच्छी तरह से नहीं दबाया जितना कि 4 इंच मोटी परत के घास ने किया। कम्पोस्ट का उपयोग गमलों के मिश्रण में एक घटक के रूप में (कुल मात्रा का 10-50 प्रतिशत) उपयोग किया जाता है। मिट्टी में लाभकारी जीवों को शामिल करने, धीमी गति से निकलने वाले पोषक तत्व प्रदान करने और मिट्टी की संरचना में सुधार करने के लिए 1-10 टन/एकड़ की दर से मृदा सुधारक के रूप में करना कहीं अधिक प्रभावी और किफायती है।

अध्ययन के अनुसार आमतौर पर मिट्टी में फास्फोरस, पोटेशियम और कुछ सूक्ष्म पोषक तत्वों के अत्यधिक स्तर का कारण बनती है। फास्फोरस और पोटेशियम की अधिकता आने वाले वर्षों में फसलों की तुलना में खरपतवारों के विकास को बढ़ावा दे सकती है।

कम्पोस्ट से मल्लिचंग मुख्यतः पेड़ों के पत्तों पर आधारित नगरपालिका कम्पोस्ट का 50 टन प्रति एकड़ की दर से प्रयोग किया गया, जबकि मध्य गर्मियों तक, कम्पोस्ट से 4 इंच (लगभग 8 टन प्रति एकड़) घास की मल्लिचंग की तुलना में काफी ज्यादा खरपतवार उग आये।

6. खाद:

खरपतवार नियंत्रण के लिए खाद को गीली घास के रूप में अनुशंसित नहीं किया जाता है। कई खरपतवार के बीज पशुओं के पाचन तंत्र से बिना किसी नुकसान के गुजर जाते हैं, और खाद में आसानी से उपलब्ध पोषक तत्व खरपतवार की वृद्धि को प्रोत्साहित करते हैं। कई पोषक तत्वों के प्रति संवेदनशील खरपतवारों में से केवल दो (बथुआ और कटीली चौलाई) हैं जो अक्सर खाद में फैलाए जाते हैं। इसके अलावा, बिना खाद वाली खाद को यूएसडीए प्रमाणित जैविक सब्जी के फसलों पर कटाई के 90-120 दिनों के भीतर नहीं डाला जा सकता है तथा मिट्टी से खरपतवार के अंकुरों के उभरने को रोकने के लिए पर्याप्त खाद डालने से मिट्टी में फास्फोरस और पोटेशियम की अत्यधिक मात्रा उत्पन्न तथा होने की संभावना होती है।

7. अन्य जैविक अवशेष :

फसल अवशेष: खासकर कपास की डंठलों का कचरा, धान के छिलके, मूंगफली के छिलके और कुड़ू के छिलके-कुछ जगहों पर पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो सकते हैं। खरपतवारों को दबाने की उनकी क्षमता बनावट और संभवतः रासायनिक गुणों के आधार पर भिन्न हो सकती है। फसल के अवशेषों का उपयोग करते समय सावधानी बरतनी चाहिए जिनमें फसल के रोगाणु, खरपतवार के बीज या शाकनाश के अवशेष हो सकते हैं। कुड़ू के छिलके बिल्लियों को आकर्षित करते हैं, जो गीली घास वाली क्यारी को कूड़ेदान के रूप में इस्तेमाल करती हैं, और इसलिए यह बिल्लियों की अधिक आबादी वाले इलाकों में एक अच्छा विकल्प नहीं हो सकता है।

8. जीवित मल्लिचः

कई वर्षों से, कुछ किसान खरपतवारों को दबाते हुए मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार लाने के प्रयास में, जीवित मल्लिच को फसल की पंक्तियों के बीच उगने वाली बारहमासी या वार्षिक आवरण की फसलों के साथ प्रयोग कर रहे हैं। अनुभव से पता चला है कि फसलों के निकट उगने वाली जीवित मल्लिच अक्सर नमी या पोषक तत्वों के लिए फसल से



प्रतिस्पर्धा करती हैं, जिसके परिणामस्वरूप उपज कम होती है। हालाँकि, बेर के दूर-दूर लगाए गए पौधों में, कतारों/पंक्तियों को बारहमासी जीवित मल्व से बनाए रखा जा सकता है, जबकि फसल की पंक्तियों के पास के क्षेत्र को प्रतिस्पर्धी वनस्पतियों से मुक्त रखा जाता है और पुआल, लकड़ी के टुकड़े या अन्य जैविक पदार्थों से मल्व किया जाता है। जीवित मल्व को स्थायी स्थाजियों की क्यारियों के बीच 2-3 फीट चौड़ी पट्टियों में भी लगाया जा सकता है, ताकि ट्रैक्टर और पैदल यातायात के लिए मजबूत और कीचड़-मुक्त रास्ते बनाए जा सकें। साथ-साथ यह निर्धारित किया जा सके कि श्रमिकों को कहाँ चलना चाहिए, और लाभकारी कीटों के लिए आवास प्रदान किया जा सके। जीवित मल्व की समय-समय पर कटाई से

प्राप्त कतरनों का उपयोग फसल की क्यारियों भी में जैविक मल्व की पूरक के रूप में किया जा सकता है।

नियमित रूप से घास काटने से बनी बारहमासी जीवित घास (तिपतिया घास) की मल्विंग मिट्टी की गुणवत्ता बनाए रखती है और कतारों में खरपतवारों को दबाती है, जबकि रसभरी व गुलाबी अमरूद की प्रत्येक पंक्ति के लिए 4 फीट चौड़ा क्षेत्र प्रतिस्पर्धी वनस्पतियों से मुक्त रखा जाता है और कतारों में पुआल और घास के कतरनों से मल्विंग की जाती है, ताकि नए पौधे अच्छी तरह से उग सकें। घास से ढकी ये कतारें पैदल यातायात के लिए एक बेहतर सतह प्रदान करती हैं और करौंदा के खेतों में मिट्टी की क्षति को कम करती हैं।



गोभी वर्गीय फसलों की सतत उत्पादन प्रणाली पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

निर्मल कुमार कुमावत- शोधार्थी, उद्यानिकी विभाग, श्री कर्ण नेंद्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर, जयपुर
संजय सीमावत- शोधार्थी, उद्यानिकी विभाग, महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान

जलवायु परिवर्तन कृषि उत्पादकता, फसल स्थिरता और वैश्विक खाद्य सुरक्षा को प्रभावित करने वाली सबसे गंभीर वैश्विक चुनौतियों में से एक के रूप में उभरा है। पत्तागोभी (ब्रासिका ओलेरासिया वर. कैपिटटा), फूलगोभी (ब्रासिका ओलेरासिया वर. बोटाइटिस), ब्रोकली (ब्रासिका ओलेरासिया वर. इटालिका), केल, ब्रसेल्स स्प्राउट्स और सरसों (ब्रासिका जुनसिया) जैसी पत्तागोभी फसलें विश्व स्तर पर सबसे व्यापक रूप से उगाई जाने वाली ठंडे मौसम की सब्जियों में से हैं। ये मानव आहार का एक पोषक तत्वों से भरपूर घटक हैं और इनका काफी आर्थिक महत्व है। हालांकि, इनकी वृद्धि और विकास जलवायु मापदंडों, विशेष रूप से तापमान, सापेक्ष आर्द्रता, वर्षा वितरण, वायुमंडलीय कार्बन डाइऑक्साइड सांद्रता और चरम मौसम घटनाओं के प्रति अत्यधिक संवेदनशील हैं। अनुमानित जलवायु परिदृश्यों से संकेत मिलता है कि आने वाले दशकों में औसत और चरम जलवायु पैटर्न दोनों में महत्वपूर्ण परिवर्तन होंगे, जिनका पत्तागोभी फसलों की शारीरिक क्रिया, गुणवत्ता, रोगों, कीटों, पोषक तत्वों की गतिशीलता और समग्र उत्पादकता पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ेगा। यह अध्याय इस बात की व्यापक और गहन समीक्षा प्रस्तुत करता है कि जलवायु परिवर्तन के विभिन्न परिदृश्य पत्तागोभी की खेती को कैसे प्रभावित करते हैं - जिसमें शारीरिक

प्रतिक्रियाएं, मॉडल-आधारित अनुमान, उपज पर प्रभाव, जैविक और अजैविक तनाव की परस्पर क्रिया और अनुकूलन रणनीतियाँ शामिल हैं।
गोभी वर्गीय फसलों पर बढ़ते तापमान के शारीरिक प्रभाव

तापमान ब्रासिका फसलों की वृद्धि और विकास को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। कोल फसलें ठंडे मौसम की सब्जियाँ होती हैं और इनकी सर्वोत्तम वृद्धि सामान्यतः 15–22°C तापमान पर होती है। जलवायु परिवर्तन के कारण तापमान में वृद्धि होने से इन फसलों में कई प्रकार के शारीरिक परिवर्तन देखने को मिलते हैं। अधिक तापमान पौधों में श्वसन दर को बढ़ा देता है, जिससे ऊर्जा की अधिक खपत होती है और खाने योग्य भागों, जैसे कर्ड या हेड में कार्बोहाइड्रेट का संचय कम हो जाता है। फूलगोभी और ब्रोकली जैसी फसलें, जिन्हें कर्ड बनने के लिए कम तापमान की आवश्यकता होती है, 26–28°C से अधिक तापमान पर सही ढंग से कर्ड बनाना शुरू नहीं कर पातीं। इसके परिणामस्वरूप “राइसिनेस” नामक समस्या उत्पन्न होती है, जिसमें कर्ड की सघनता कम हो जाती है और उसकी सतह दानेदार हो जाती है। इसके अलावा “लीफी कर्ड” की स्थिति भी बन सकती है, जिसमें विकसित हो रहे कर्ड के बीच से पत्तियाँ निकलने लगती हैं।



पत्तागोभी में यदि हेड बनने के समय लंबे समय तक अधिक तापमान बना रहता है, तो इससे ढीले हेड बनते हैं, उनकी सघनता कम हो जाती है तथा कैल्शियम के संचलन में बाधा के कारण आंतरिक टिपबर्न की समस्या भी उत्पन्न हो सकती है।

उच्च रात्रिकालीन तापमान विशेष रूप से कोल फसलों में कर्ड और हेड के निर्माण को प्रभावित करता है। अध्ययनों से पता चला है कि रात के तापमान में केवल 1-2°C की वृद्धि भी पत्तागोभी और ब्रोकली में हेड की घनता को काफी कम कर देती है। अधिक तापमान सरसों और पत्तागोभी जैसी फसलों में समय से पहले फूल आने (बोल्टिंग) की प्रक्रिया को भी बढ़ावा देता है, विशेषकर लंबे दिन की परिस्थितियों में। जलवायु परिवर्तन के मॉडल बताते हैं कि कई क्षेत्रों में तापमान 30°C से अधिक हो सकता है, जिससे बोल्टिंग की समस्या लगभग निश्चित हो जाती है और बाजार में बिकने योग्य उत्पादन में भारी कमी आ जाती है। इसलिए बढ़ते तापमान की परिस्थितियाँ विश्व स्तर पर कोल फसलों के उत्पादन के लिए एक गंभीर चुनौती प्रस्तुत करती हैं।

गोभी वर्गीय फसलों की वृद्धि पर बढ़ी हुई कार्बन डाइऑक्साइड सांद्रता का प्रभाव

वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड का बढ़ता स्तर, जो कि मध्य शताब्दी तक लगभग 550-700 ppm तक पहुँचने का अनुमान है, सामान्यतः C₃ पौधों जैसे ब्रैसिका फसलों में प्रकाश संश्लेषण की क्षमता को बढ़ा देता है। बढ़ी हुई कार्बन डाइऑक्साइड सांद्रता पौधों में बायोमास संचय, पत्तियों के विस्तार और जल उपयोग दक्षता को बढ़ाने में सहायक होती है। हालांकि, इसके सकारात्मक प्रभावों के साथ कुछ नकारात्मक परिणाम भी जुड़े हुए हैं। अधिक कार्बन डाइऑक्साइड के कारण पौधों के खाने योग्य भागों में पोषक तत्वों की सघनता कम हो जाती है, जिसे डायल्यूशन प्रभाव कहा जाता है। इसके कारण प्रोटीन, कैल्शियम, मैग्नीशियम, आयरन और जिंक जैसे महत्वपूर्ण पोषक तत्वों की मात्रा घट जाती है, जिससे सब्जियों की पोषण गुणवत्ता कम हो जाती है और पौधों में शारीरिक विकारों की संभावना बढ़ जाती है।

इसके अतिरिक्त, बढ़ी हुई कार्बन डाइऑक्साइड पौधों की रासायनिक संरचना को भी बदल देती है, जिससे कार्बोहाइड्रेट की मात्रा नाइट्रोजन की तुलना में अधिक हो जाती है। यह असंतुलन कोल फसलों को रस चूसने वाले कीटों जैसे एफिड्स और थ्रिप्स के प्रति अधिक संवेदनशील बना देता है, क्योंकि ये कीट कम नाइट्रोजन वाले पौधों पर तेजी से बढ़ते हैं। इसलिए, यद्यपि कार्बन डाइऑक्साइड की अधिकता कुछ समय के लिए पौधों की वनस्पतिक वृद्धि को बढ़ा देती है, लेकिन

अंततः गर्म होती जलवायु परिस्थितियों में यह फसलों की सहनशीलता और स्थिरता को कम कर देती है।

वर्षा की परिवर्तनशीलता, सूखा और मृदा नमी की चरम स्थितियों के प्रभाव

गोभी वर्गीय फसलों की उचित वृद्धि और पोषक तत्वों के अवशोषण के लिए मिट्टी में लगातार नमी का होना बहुत आवश्यक है। जलवायु परिवर्तन के कारण वर्षा के पैटर्न में अनियमितता बढ़ गई है, जिससे कभी सूखे की स्थिति तो कभी अधिक वर्षा देखने को मिलती है। सूखे की स्थिति में पौधों द्वारा पोषक तत्वों का अवशोषण कम हो जाता है, विशेष रूप से बोरॉन और कैल्शियम का। इसके परिणामस्वरूप हॉलो स्टेम, ब्राउन कर्ड और ब्लैक पेटियोल जैसे विकार उत्पन्न हो सकते हैं। यदि वनस्पतिक अवस्था के दौरान लंबे समय तक सूखा बना रहता है, तो पौधों का आकार छोटा रह जाता है और हेड बनने में देरी होती है।

इसके विपरीत, अधिक वर्षा या सूखे के बाद अचानक अधिक सिंचाई करने से भी कई शारीरिक विकार उत्पन्न हो जाते हैं, जैसे पत्तागोभी में हेड स्प्लिटिंग और फूलगोभी में ओडिमा। अत्यधिक नमी के कारण मिट्टी की अम्लता बढ़ जाती है, जिससे मोलिब्डेनम की कमी हो जाती है और इसके परिणामस्वरूप फूलगोभी में व्हिपटेल रोग उत्पन्न होता है। इसके अलावा, जलभराव वाली मिट्टी में जड़ों का श्वसन प्रभावित हो जाता है, जिससे पौधे क्लबरूट जैसे जड़ रोगों के प्रति अधिक संवेदनशील हो जाते हैं। इस प्रकार, जलवायु परिवर्तन से जुड़ी पानी की अनियमितताएँ ब्रैसिका फसलों की शारीरिक क्रियाओं को गंभीर रूप से प्रभावित करती हैं और अंततः कटाई योग्य उत्पादन कम कर देती हैं।

जलवायु परिवर्तन के तहत कीट और रोग की गतिशीलता

गोभी वर्गीय फसलों के लिए जलवायु परिवर्तन से जुड़ा सबसे महत्वपूर्ण खतरा रोगों और कीटों के प्रसार के स्वरूप में तेज बदलाव है। अधिक तापमान और अधिक आर्द्रता मिलकर ब्रैसिका फसलों के प्रमुख रोगजनकों के जीवित रहने, प्रजनन और फैलाव को बढ़ा देते हैं। उदाहरण के लिए, ब्लैक रॉट रोग का कारक जीवाणु जैथोमोनास कैम्पेस्ट्रि लगभग 28-30°C तापमान पर तेजी से बढ़ता है, जिससे पौधों में गंभीर वास्कुलर नेक्रोसिस और पत्तियों पर पीले V-आकार के धब्बे दिखाई देते हैं। इसी प्रकार डाउनी मिल्ड्यू का प्रकोप पत्तियों पर लंबे समय तक नमी बने रहने और अनियमित वर्षा तथा गर्म रातों के कारण बढ़ जाता है।





इसके अतिरिक्त, अल्टरनेरिया ब्रैसिका, स्कलेरोटिनिया स्कलेरोटियोरम और माइक्रोस्फेरेला ब्रासिकिकोला जैसे फफूंदजनित रोगजनक गर्म और आर्द्र परिस्थितियों में अधिक तेजी से फैलते हैं। एफिड्स द्वारा फैलने वाले वायरस रोग, जैसे फूलगोभी मोजेक वायरस और शलजम मोजेक वायरस, भी बढ़ने की संभावना रखते हैं क्योंकि गर्म और शुष्क जलवायु में इनके वाहक की संख्या तेजी से बढ़ती है।

कीटों में डायमंडबैक मॉथ ब्रैसिका फसलों का एक प्रमुख वैश्विक कीट है, जो अधिक तापमान के कारण एक ही मौसम में अधिक पीढ़ियाँ पूरी कर सकता है। यह कीट रासायनिक कीटनाशकों के प्रति प्रतिरोध विकसित करने के लिए कुख्यात है, और जलवायु में गर्मी बढ़ने

से यह प्रक्रिया और तेज हो जाती है। इसके अलावा थ्रिप्स भी गर्म और शुष्क गर्मियों में अधिक नुकसान पहुँचाते हैं, जिससे पत्तागोभी के हेड पर भूरे धब्बे बन जाते हैं। इसलिए, जलवायु परिवर्तन के कारण रोगों और कीटों का बढ़ता प्रसार ब्रैसिका फसलों की स्थिरता और उत्पादन के लिए एक बड़ी चुनौती बनता जा रहा है।

जलवायु परिवर्तन के अंतर्गत पोषक तत्वों का असंतुलन और शारीरिक विकार

जलवायु परिवर्तन के कारण मिट्टी में होने वाले बदलाव कई प्रकार की पोषक तत्वों की कमी उत्पन्न करते हैं, जो सीधे तौर पर कोल



फसलों की गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं। अधिक वर्षा के कारण मिट्टी से मोलिब्डेनम, कैल्शियम, मैग्नीशियम और बोरॉन जैसे आवश्यक पोषक तत्व बहकर निकल जाते हैं। मोलिब्डेनम की कमी से फूलगोभी में व्हिपटेल रोग उत्पन्न होता है, जिसमें पत्तियाँ पतली और विकृत हो जाती हैं। कैल्शियम की कमी के कारण पत्तागोभी में आंतरिक टिपबर्न की समस्या उत्पन्न होती है, जिससे हेड की गुणवत्ता प्रभावित होती है। इसी प्रकार, बोरॉन की कमी से फूलगोभी के कर्ड में हॉलो स्टेम और ब्राउन फ्लेकिंग दिखाई देती है। मैग्नीशियम की कमी के कारण विशेष रूप से ब्रोकली और पत्तागोभी में इंटरवेनियल क्लोरोसिस यानी पत्तियों की नसों के बीच पीला पड़ना दिखाई देता है। ये सभी पोषक तत्वों से संबंधित विकार न केवल फसल के बाजार मूल्य को कम करते हैं, बल्कि उपभोक्ता की स्वीकृति और भंडारण क्षमता को भी प्रभावित करते हैं।

गोभी वर्गीय फसलों में पोषक तत्वों से संबंधित विकार और जलवायु का प्रभाव

विकार	कारण	जलवायु का प्रभाव
व्हिपटेल	मोलिब्डेनम की कमी	अधिक वर्षा के बाद अम्लीय मिट्टी में अधिक सामान्य
हॉलो स्टेम	बोरॉन की कमी	सूखे की स्थिति में पोषक तत्वों का अवशोषण कम हो जाता है
आंतरिक टिपबर्न	कैल्शियम का असंतुलन	गर्म और शुष्क मौसम में अधिक होता है
बटनिंग	तापमान तनाव	पौध की प्रारंभिक अवस्था में गर्मी या सूखा
ब्लैक मिडरिब	अत्यधिक नमी में उतार-चढ़ाव	जलवायु परिवर्तन से नमी में अस्थिरता

गोभी वर्गीय फसलों में जलवायु परिदृश्य मॉडलिंग और उपज अनुमान

फसल सिमुलेशन मॉडल जैसे DSSAT, APSIM, WOFOST और INFOCROP का व्यापक रूप से उपयोग यह आकलन करने के लिए किया जाता है कि विभिन्न जलवायु परिदृश्यों का कोल फसलों की उपज पर क्या प्रभाव पड़ता है। कम तापवृद्धि वाले परिदृश्य (RCP 2.6) में लगभग 5–10% तक उपज में कमी का अनुमान लगाया गया है, जिसका मुख्य कारण रोगों और कीटों की बढ़ती घटनाएँ हैं। मध्यम तापवृद्धि वाले परिदृश्य (RCP 4.5) में फूलगोभी और ब्रोकली की उपज में 20–35% तक गिरावट हो सकती है, क्योंकि अधिक

तापमान के कारण कर्ड बनने की प्रक्रिया प्रभावित होती है और समय से पहले बोल्टिंग की समस्या बढ़ जाती है। वहीं अधिक तापवृद्धि वाले परिदृश्य (RCP 8.5) में कई उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में वर्ष के कुछ महीनों के दौरान फूलगोभी और ब्रोकली की खेती के लिए परिस्थितियाँ उपयुक्त नहीं रह सकती हैं। यदि कोई अनुकूलन रणनीतियाँ नहीं अपनाई जाती हैं, तो 40–60% तक उपज हानि होने की संभावना है। मॉडलिंग अध्ययनों से यह भी संकेत मिलता है कि बुवाई के समय में बड़े बदलाव हो सकते हैं और भविष्य में उत्पादन ऊँचाई वाले क्षेत्रों या ठंडे मौसम की ओर स्थानांतरित हो सकता है।

गोभी वर्गीय फसलों के उत्पादन को बनाए रखने के लिए अनुकूलन और रणनीतियाँ

जलवायु जोखिमों के प्रभावी प्रबंधन के लिए समेकित अनुकूलन रणनीतियों की आवश्यकता होती है। कृषि संबंधी अनुकूलनों में बुवाई की तिथि में परिवर्तन, ऊष्मा-सहनशील किस्मों का उपयोग, मिट्टी के तापमान को नियंत्रित करने के लिए मल्लिचंग, ड्रिप सिंचाई का प्रयोग तथा पॉलीहाउस और शेड नेट जैसी संरक्षित खेती प्रणालियों को अपनाना शामिल है। इसके अलावा, पौधा प्रजनन और जैव प्रौद्योगिकी जलवायु-सहनशील ब्रेसिका किस्मों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मार्कर-सहायित चयन और CRISPR आधारित जीनोम संपादन जैसी आधुनिक तकनीकें गर्मी, सूखा और प्रमुख रोगों के प्रति प्रतिरोधी किस्मों के विकास के लिए आशाजनक साधन हैं।

एकीकृत कीट प्रबंधन रणनीतियाँ, जैसे जैविक नियंत्रण एजेंटों का उपयोग, फेरोमोन ट्रैप, प्राकृतिक शत्रु (जैसे डायमंडबैक मॉथ के परजीवी) तथा जलवायु आधारित पूर्वानुमान प्रणाली, कीट प्रकोप को कम करने में सहायक होती हैं। इसके साथ ही मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार—जैविक संशोधनों का उपयोग, pH प्रबंधन तथा सूक्ष्म पोषक तत्वों की पूर्ति—पौधों को जलवायु से उत्पन्न तनाव के प्रति अधिक सहनशील बनाते हैं। इन सभी उपायों को मिलाकर एक बहुआयामी ढांचा तैयार होता है, जो बदलती जलवायु परिस्थितियों में कोल फसलों के टिकाऊ उत्पादन को सुनिश्चित करने में सहायक होता है।

1. उन्नत एवं जलवायु-सहनशील किस्मों का उपयोग

जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम करने के लिए ऊष्मा-सहनशील, सूखा-सहनशील और रोग-प्रतिरोधी किस्मों का चयन करना आवश्यक है। आधुनिक पौधा प्रजनन तकनीकों जैसे मार्कर-असिस्टेड सिलेक्शन और जीन संपादन के माध्यम से ऐसी किस्में विकसित की जा रही हैं जो अधिक तापमान, सूखा तथा रोगों के प्रति अधिक सहनशील होती हैं।



2. बुवाई समय में परिवर्तन

जलवायु परिवर्तन के कारण तापमान और मौसम चक्र बदल रहे हैं, इसलिए उचित समय पर बुवाई बहुत महत्वपूर्ण हो जाती है। यदि तापमान अधिक होने की संभावना हो तो बुवाई को थोड़ा पहले या बाद में किया जा सकता है ताकि पौधों की संवेदनशील अवस्थाएँ अत्यधिक गर्मी या ठंड से बच सकें।

3. संरक्षित खेती

पॉलीहाउस, शेड नेट और लो-टनल तकनीक का उपयोग करके पौधों को अत्यधिक गर्मी, ठंड और वर्षा से बचाया जा सकता है। इससे तापमान और आर्द्रता को नियंत्रित किया जा सकता है, जिससे पौधों की वृद्धि बेहतर होती है और उत्पादन में स्थिरता बनी रहती है।

4. जल प्रबंधन

जलवायु परिवर्तन के कारण वर्षा की अनियमितता बढ़ रही है, इसलिए ड्रिप सिंचाई और माइक्रो-इरिगेशन जैसी तकनीकों का उपयोग करना चाहिए। इससे पानी की बचत होती है और पौधों को आवश्यक नमी लगातार मिलती रहती है। साथ ही मल्लिचिंग (प्लास्टिक या जैविक मल्लिच) से मिट्टी की नमी बनाए रखने और तापमान नियंत्रित करने में मदद मिलती है।

5. मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार

मिट्टी की उर्वरता और संरचना को सुधारने के लिए जैविक खाद, कम्पोस्ट, वर्मी-कम्पोस्ट और हरी खाद का प्रयोग करना चाहिए। इससे मिट्टी की जल-धारण क्षमता बढ़ती है और पौधों को आवश्यक पोषक तत्व मिलते हैं। इसके अलावा मिट्टी के pH का संतुलन और सूक्ष्म पोषक तत्वों (जैसे बोरॉन, मोलिब्डेनम, कैल्शियम) की पूर्ति भी आवश्यक है।

6. एकीकृत कीट एवं रोग प्रबंधन

जलवायु परिवर्तन के कारण कीट-रोगों का प्रकोप बढ़ सकता है। इसके नियंत्रण के लिए फेरोमोन ट्रैप, जैविक नियंत्रण एजेंट, प्राकृतिक

शत्रु, और रोग-प्रतिरोधी किस्मों का उपयोग करना चाहिए। रासायनिक कीटनाशकों का उपयोग केवल आवश्यकता होने पर ही करना चाहिए।

7. जलवायु आधारित पूर्वानुमान और तकनीकी सहायता

आधुनिक क्लाइमेट मॉडेलिंग और मौसम पूर्वानुमान प्रणाली किसानों को यह जानकारी देती है कि किस समय तापमान, वर्षा या कीट-रोग का खतरा अधिक हो सकता है। इससे किसान समय पर उचित प्रबंधन उपाय अपना सकते हैं।

8. फसल विविधीकरण और फसल चक्र

एक ही फसल पर निर्भर रहने के बजाय फसल विविधीकरण और फसल चक्र (crop rotation) अपनाने से मिट्टी की उर्वरता बनी रहती है और रोग-कीटों का प्रकोप कम होता है।

निष्कर्ष

जलवायु परिवर्तन कोल फसलों के उत्पादन के लिए कई जटिल चुनौतियाँ उत्पन्न करता है, जो पौधों की शारीरिक क्रियाओं, पोषक तत्वों की गतिशीलता, रोगों की घटनाओं, कीटों के व्यवहार तथा समग्र उत्पादकता को प्रभावित करता है। तापमान में उतार-चढ़ाव, वायुमंडलीय कार्बन डाइऑक्साइड की बढ़ती मात्रा, वर्षा की अनियमितता और चरम मौसम की घटनाओं के प्रति ब्रैसिका फसलें अत्यधिक संवेदनशील होती हैं, जिसके कारण वे अनुमानित जलवायु परिदृश्यों के प्रभावों से अधिक प्रभावित होती हैं। इन सभी तनाव कारकों के संयुक्त प्रभाव यह दर्शाते हैं कि प्रभावी समाधान के लिए व्यापक अनुकूलन रणनीतियों की आवश्यकता है, जिनमें आनुवंशिक, कृषि संबंधी, पारिस्थितिक तथा तकनीकी उपायों का समन्वय शामिल हो। भविष्य में शोध का मुख्य ध्यान जलवायु-सहनशील किस्मों के विकास, उन्नत मॉडलिंग प्रणालियों तथा टिकाऊ फसल प्रबंधन तकनीकों पर होना चाहिए, ताकि आने वाले दशकों में कोल फसलों के उत्पादन को सुरक्षित और स्थिर बनाया जा सके।





परम्परागत खेती छोड़ अपनाई वैज्ञानिक तकनीक सरसों ने बदली नागौर के किसान की तकदीर

हरि राम चौधरी- विषय वस्तु विशेषज्ञ (सस्य विज्ञान), गोपीचंद सिंह- वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष
 भावना शर्मा- विषय वस्तु विशेषज्ञ (गृह विज्ञान), बुधाराम- विषय वस्तु विशेषज्ञ (पशुपालन)
 कल्पना चौधरी- विषय वस्तु विशेषज्ञ (उद्यान विज्ञान)
 कृषि विज्ञान केन्द्र, अठियासन, नागौर-I, कृषि विश्वविद्यालय, जोधपुर

परिचय

सरसों भारत की एक प्रमुख तिलहनी फसल है, जो रबी के मौसम में उगई जाती है। यह खाद्य तेल का महत्वपूर्ण स्रोत है और कृषि अर्थव्यवस्था में इसका विशेष योगदान है। सरसों की उन्नत किस्मों और तकनीकी ज्ञान के उपयोग से किसान कम लागत में अधिक पैदावार प्राप्त कर सकते हैं।

फसल और किस्म: सरसों (किस्म डीआरएमआर 1165-40)

किसान का नाम और पता: श्री पूरा राम सुपत्र श्री शिव नाथ,

गाँव: भरुंदा,

तहसील: रियांबड़ी,

जिला: नागौर (राजस्थान)

किसान के खेत की पृष्ठभूमि:

पिछली फसलें मूंग, ग्वार और बाजरा थीं। मिट्टी में नाइट्रोजन और फास्फोरस की मात्रा कम तथा पोटेशियम की मात्रा मध्यम थी।

प्रदर्शित तकनीक का विवरण:

- ✓ उन्नत बीज (किस्म डीआरएमआर 1165-40) का उपयोग 5 किग्रा/हेक्टेयर।
- ✓ एन.पी.के. कंसोर्टिया कल्चर से बीज उपचार 5 मिली/किग्रा बीज।

- ✓ कतार से कतार की दूरी 30 सेमी और पौधे से पौधे की दूरी 10 सेमी रखते हुए कतारबद्ध बुवाई।
- ✓ अनुशंसित नाइट्रोजन 60 किग्रा/हेक्टेयर और फास्फोरस 40 किग्रा/हेक्टेयर का उपयोग।
- ✓ कवकनाशी के रूप में कार्बेन्डाजिम (12 प्रतिशत) और मैकोजेब



के.वी.के., नागौर में सी.एफ.एल.डी.- सरसों पर साझेदार किसानों को प्रशिक्षण एवं सामग्री वितरण



(63 प्रतिशत) 1.25 किग्रा/हेक्टेयर का उपयोग।

- ✓ पोषक तत्व प्रबंधन के लिए जिंक सल्फेट (33 प्रतिशत) 12.5 किग्रा/हेक्टेयर और सल्फर (90 प्रतिशत) 6.25 किग्रा/हेक्टेयर का प्रयोग।
- ✓ रस चूसने वाले कीटों के प्रबंधन के लिए एसिटामिपप्रिड (20 प्रतिशत) 312.5 ग्राम/हेक्टेयर का उपयोग।
- ✓ वेस्ट डीकंपोजर का उपयोग 62.5 ग्राम/हेक्टेयर।

संस्थागत भागीदारी:

के.वी.के., नागौर ने रबी 2024-25 में एन.एफ.एस.एम.-तिलहन के तहत सरसों पर क्लस्टर फ्रंटलाइन प्रदर्शन आयोजित किया। श्री पूरा राम ने सरसों की फसल की उच्च उत्पादकता की तकनीकें सीखने के लिए के.वी.के. के प्रशिक्षणों में भाग लिया। के.वी.के. ने आवश्यक इनपुट (सामग्री) प्रदान किए और वैज्ञानिकों ने आवश्यकतानुसार तकनीकी मार्गदर्शन के लिए सलाह दी। विशेषज्ञों द्वारा उन्हें अगली सीजन के लिए इस उपज को बीज के रूप में बचाने का आग्रह किया गया।

सफलता के बिंदु:

उपज में वृद्धि हुई और चमकीले मोटे दानों के कारण बाजार में अच्छी कीमत मिली।

किसान की प्रतिक्रिया:

- किसानों ने बेहतर उपज के कारण सरसों की किस्म डीआरएमआर 1165-40 की सराहना की।



भेरुंदा गाँव में सी.एफ.एल.डी.-सरसों पर प्रक्षेत्र दिवस

- सरसों की बुवाई से पहले प्रशिक्षण और इनपुट का वितरण किया गया था।
- बीज उपचार और कीटनाशकों के प्रयोग के कारण कीटों का प्रकोप कम रहा।

उपज परिणाम (क्विंटल/हेक्टेयर):

- ✓ किस्म/तकनीक की संभावित उपज: 26.00
- ✓ जिला औसत: 12.32
- ✓ राज्य औसत: 15.58

स्थानीय मानक की तुलना में तकनीक का प्रदर्शन (उत्पादकता और लाभ में वृद्धि):

विशिष्ट तकनीक	उपज (क्विं./हे.)	कुल लागत (रू./हे.)	कुल आय (रू./हे.)	शुद्ध आय (रू./हे.)	बी:सी अनुपात
कृषक पद्धति	17.36	32875.54	109745.00	76869.46	3.34
प्रदर्शन	22.28	34441.01	141252.50	106811.49	4.10
वृद्धि/अंतर	28.34 प्रतिशत	1565.47	31507.50	29942.03	0.76



गोबर की खाद (फार्म यार्ड मैन्योर) से समृद्धि



1



2



3

कुलदीप कुमार- बहुकार्य निष्पादक, केन्द्रीय जल आयोग, कोटा कालोनी, रायपुर (छत्तीसगढ़)
सौरभ- छात्र, सस्य विज्ञान संकाय, राजा महेन्द्र प्रताप महाविद्यालय, गुरुकुल नारसन, (हरिद्वार)
डॉ. रणबीर सिंह- सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी, जैव-पदार्थ उपयोग इकाई-सस्य विज्ञान संभाग
भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली

अपने खाद एवं बीज से समृद्ध किसान।

भारत एक कृषि प्रधान देश है और भारतीय कृषि प्रणाली में पशुपालन का एक महत्वपूर्ण योगदान है। वे न केवल हमें दूध और मांस प्रदान करते हैं परन्तु साथ ही खाद, ऊन, अंडा आदि उत्पादन में भी इनका योगदान है, इसके अतिरिक्त, इनका व्यापक रूप से कृषि में खेतों को जोतने एवं परिवहन के लिए भी उपयोग किया जाता है। सामान्य पशु फार्म से निकलने वाले अपशिष्ट गोबर, मूत्र, नाल, मृत जन्म, पोस्टमार्टम मलबा, बिस्तर, चारा अपव्यय, दूध-घर का कचरा या धोना, मृत पशु और पक्षी, बाल, खुर और सींग आदि है, जिनका उचित प्रबंधन पशु फार्म की एक

महत्वपूर्ण चुनौती है। जानवरों के कचरे के साथ सार्वजनिक पर्यावरणीय चिंता यह है कि यह आक्रामक गंध के साथ वायुमंडलीय हवा को प्रभावित करता है, बड़ी मात्रा में CO₂ और अमोनिया का उत्सर्जन होता है जो अम्लीय वर्षा और ग्रीनहाउस प्रभाव में योगदान करता है। यह जल स्रोतों को भी प्रदूषित कर सकता है और संक्रामक रोगों को फैलाने में सहायक हो सकता है। अपशिष्ट प्रबंधन में निगरानी और विनियमन के साथ-साथ कचरे का संग्रह, परिवहन, उपचार और निपटान शामिल है। अपशिष्ट पदार्थों से होने वाले हानिकारक प्रभाव जैसे प्रदूषण, बीमारियों/रोगजनकों के प्रसार को खत्म या कम करने के लिए कचरे को



जैविक खाद में परिवर्तित किया जा सकता है एवं सूक्ष्मजैविक लोड को कम किया जा सकता। कंपोस्टिंग, रीसाइक्लिंग, रेंडरिंग, बायो-डीजल जैसे पारम्परिक और उन्नत दोनों तरीकों से डेयरी फार्म कचरे का प्रबंधन प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हो सकता है। कम्पोस्टिंग जैविक अपघटन और कार्बनिक पदार्थों का स्थिरीकरण है। यह प्रक्रिया एक अंतिम उत्पाद का उत्पादन करती है जो स्थिर है, कम गंध है, रोगजनकों से मुक्त है और इसे गोबर खाद के रूप में भूमि की ऊपरी सतह पर पंक्तियों में डालकर जैविक खाद तैयार किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त देसी गाय से बीजामृत, जीवामृत एवं घनजीवंतता भी प्राप्त होते हैं। एक शोधानुसार देसी गाय के एक ग्राम गोबर में अनेक लाभकारी सूक्ष्म जीवाणु होते हैं, जो मृदा स्वास्थ्य को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। देसी गाय के गोबर और गौमूत्र की महक से केंचुएं भूमि की सतह पर आकर भूमि को उपजाऊ बनाते हैं।

भारत में प्राचीन काल से जैविक खादों का प्रयोग परम्परागत कृषि में होता आया है। इनमें प्रमुख गोबर खाद है। नगरों में कूड़े-करकट से और ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि अवशेष एवं गोबर से कम्पोस्ट खाद तैयार की जाती है। गोबर की खाद में अन्य कम्पोस्ट की अपेक्षा नाइट्रोजन एवं फॉस्फोरस अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। गोबर की खाद कर उपयोग से रासायनिक खाद एवं कीटनाशकों के प्रयोग को कम करने के लिए कल-कारखानों के निर्माण एवं रखरखाव पर होने वाले खर्च की बचत कर भारतीय अर्थव्यवस्था के स्तर को बढ़ावा देने में योगदान किया जा सकता है। गोबर खाद का उत्पादन एक घरेलू व्यवसाय बन रहा है, इसके द्वारा कम निवेश या पूँजी से अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

गोबर की खाद (फार्म यार्ड मैन्योर) सर्वश्रेष्ठ तथा सबसे अधिक मात्रा में प्रयोग हाने वाली जैविक खाद है। गोबर की खाद पशुओं, जैसे; गाय, भैंस, घोड़ा, सूअरों, मुर्गी एवं बत्तख इत्यादि के ठोस तथा द्रव मलमूत्र को किसी पोषक पदार्थों से साधारणतः बिछावन, भूसा, पुआल, पेड़-पौधों की पत्तियां, रेत व लकड़ी का बुरादा आदि से मिलाकर तैयार करते हैं अथवा उपलब्ध गोबर व कृषि अवशेष से लम्बाई में ढेर बनाकर 2 से 3 बार पलटाई करके उत्तम खाद तैयार कर सकते हैं। यह खाद सर्वाधिक प्रचलित खादों में से एक है। परम्परागत खाद तैयार करने में 5 से 8 माह का समय लगता है। लेकिन एरोबिक विधि से खाद 4 से 5 महीनों में तैयार हो जाती है। इस विधि से खाद में खरपतवारां के बीज नष्ट हो जाते हैं तथा खाद में दीमक भी नहीं लगती। उचित मात्रा में तापमान व नमी मिलने से सूक्ष्मजीवाणुओं की सक्रियता पुरानी विधि की तुलना में तीव्र रहती है। अच्छी तरह से गलने व सड़ने के कारण पोषक तत्व शीघ्र व संतुलित मात्रा में फसल को मिलते हैं। गोबर की खाद की रचना

अस्थिर होती है। इस खाद में औसतन 0.5 प्रतिशत नाइट्रोजन, 0.25 प्रतिशत फॉस्फोरस तथा 0.5 प्रतिशत पोटेशियम होता है। इनके अतिरिक्त सल्फर, लौह, मैंगनीज, तांबा व जस्ता आदि सभी तत्व सूक्ष्म मात्रा में पाये जाते हैं। साधारणतः गोबर की खाद में उपस्थित 30 प्रतिशत नाइट्रोजन, 60 से 70 प्रतिशत फॉस्फोरस एवं 75 प्रतिशत पोटेश पहली फसल को पहले वर्ष में ही मिलने की सम्भावना रहती है तथा इस गोबर खाद का असर भूमि में 3 वर्ष तक चलता है। इसके अतिरिक्त मानव खाद्य एवं पोषण स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए मृदा उत्पादकता को लम्बे समय तक बनाये रखने के लिए विभिन्न प्रकार की जैविक खादें जैसे; गोबर की खाद, कम्पोस्ट, हरी खाद, जैविक उर्वरक तथा जैविक नियंत्रण के उपयोग को बढ़ावा देना ही समय की मांग है। कम समय, श्रम, खर्च व उन्नत तकनीकों से जैविक खादें तैयार की जा सकती है। इसके लिए उत्पादन तकनीकों की जानकारी होना आवश्यक है।

गोबर खादें बनाने की विधियां

गोबर बनाने की मुख्यतः दो विधियां होती हैं:- वायवीय तथा अवायवीय। इनमें अवायवीय विधि धीमी तथा गड्ढे में बनाई जाती है। वायवीय विधि में मुख्यतः समतल सतह पर पंक्तियों में ढेर बनाकर उनमें वायु का संचार किया जाता है।

वायवीय विधि से कम्पोस्ट बनाने की विंडोव तकनीक

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली द्वारा कृषि अवशेषों तथा अन्य सड़ने वाले अवशेषों का उपयोग कर, कम समय एवं लागत में अधिक गुणवत्ता वाली कम्पोस्ट बनाने की विंडोव विधि विकसित की गई है। यह विधि सभी स्तरों पर बहुत उपयोगी सिद्ध हुई हो रही है।

विंड-रॉ-विधि में प्रयुक्त सामग्री:

खेतों से प्राप्त सभी फसलों के अवशेष, पत्तियों, घास-फूस, पशुओं का मल-मूत्र एवं बिछावन, चारे के अवशेष, फल-सब्जियों के छिलके, हरियाली पार्क एवं बाग-बगीचों की कटाई-छंटाई के अवशेष, पतझड़ से प्राप्त पत्तियां, फूल आदि कम्पोस्ट के लिए प्रयुक्त होते हैं। न सड़ने वाले पदार्थ जैसे; प्लास्टिक, रबर, धातु, पॉलीथीन, कांच इत्यादि को प्रारम्भ से ही अलग कर दिया जाता है।

विंड रॉ विधि में प्रयुक्त मशीन एवं यंत्र:

छोटे स्तर पर कम मात्रा में कम्पोस्ट बनाने के लिए फावड़ा, तसला, टोकरी, रैक इत्यादि से काम चल जाता है। बड़े पैमाने पर श्रम एवं समय की बचत के लिए ट्रैक्टर, चालित मशीनें भी उपयोग की जाती है। इन मशीनों से पलटाई तथा सभी पदार्थों को सुचारु रूप से मिलाने के लिए 'कम्पोस्ट टर्नर कम मिक्सर' मशीन तथा कच्चे एवं तैयार पदार्थों को



यथा-स्थान रखने एवं ट्रक आदि में भरने हेतु 'लोडर' बड़े आकार की शाखाओं को वांछित आकार या छोटा करने हेतु 'श्रेडर' तथा तैयार खाद को छानने हेतु विभिन्न क्षमता वाली 'छनाई मशीनों' की आवश्यकता होती है।



गोबर खाद तैयार करने के विभिन्न चरण

1. सर्वप्रथम फसल अवशेषों को लम्बाई में ढेर (विन्डरो) बनाया जाता है। इसकी ऊँचाई व चौड़ाई 2.0 से 2.5 मी. तथा लम्बाई उपलब्ध जगह के अनुसार 10 से 100 मीटर या उससे अधिक रखी जाती है। इस सामग्री में भार के आधार पर 80 प्रतिशत फसल अवशेष तथा 20 प्रतिशत ताजा गोबर मिला सकते हैं। यदि गोबर उपलब्ध न हो तो भी खाद को आसानी से बना सकते हैं। धान अथवा अन्य फसलें जैसे; कपास, अरहर आदि के अवशेषों को श्रेडर मशीन द्वारा 8 से 10 सें.मी. छोटा कर लेते हैं।
2. इन विन्ड्रो पर सूक्ष्मजीवीय कल्चर के चूर्ण या द्रव का छिड़काव किया जाता है। यह कल्चर आजकल सरकारी संस्थानों तथा प्राइवेट एजेंसियों पर भी मिल जाता है।
3. कल्चर डालने के तुरन्त बाद पहली पलटाई करते हैं, जिससे कल्चर सभी पदार्थों में अच्छे से मिल जायें। द्वितीय पलटाई 10 दिन बाद,



तीसरी 25 दिन बाद, चौथी 40 दिन बाद तथा पांचवीं 55-60 दिन पर करते हैं। पलटाइयों का अन्तर तथा संख्या विभिन्न प्रकार के अवशेषों के आधार पर कम या अधिक हो सकती है।

4. विभिन्न पलटाइयों के बीच समय-समय पर विन्ड्रो में नमी का स्तर बनाये रखने के लिए पानी का छिड़काव करते हैं तथा विन्ड्रो के आकार को सही करते हैं।
5. प्रयुक्त सामग्री के अनुसार 60 से 70 दिन में कम्पोस्ट खेत में डालने के लिए तैयार हो जाती है। यदि कम्पोस्ट को तुरन्त प्रयोग न करना हो तो बड़े आकार के ढेर बनाकर तथा ढक कर रखा जा सकता है। इससे पोषक तत्वों का हास कम होता है।



सारणी 1.1 विभिन्न जैविक खादों में तुलनात्मक पोषक तत्व

क्रमांक	जैविक खाद	मुख्य पोषक तत्व (प्रतिशत)		
		नत्रजन	फॉस्फोरस	पोटाश
1	गोबर की खाद	0.5	0.25	0.5
2	वर्मीकम्पोस्ट	2.5	1.5-2.0	1.5-2.0
3	नाडेप कम्पोस्ट	0.5-1.5	0.5-0.9	1.2-1.4
4	शहरी कम्पोस्ट	1.5	1.0	1.5

स्रोत: खेती, 2017, जून



गोबर खाद की विधि एवं मात्रा

सभी प्रकार के कम्पोस्ट खाद को फसल बुवाई के 15-30 दिन पूर्व खेत में 100-150 क्विंटल प्रति हेक्टेयर की दर से फैलाकर अच्छी प्रकार से जुताई करके मिला देना चाहिए।

गोबर की खाद बनाने में सावधानियाँ

- ✓ गोबर की खाद बनाते समय वर्षा एवं धूप से बचना चाहिए।
- ✓ गोबर की खाद में नमी की मात्रा बनाए रखने के लिए प्रारम्भ के तीन-चार महीनों तक इसकी पलटाई न करें।
- ✓ वर्षा में गोबर की खाद को ऊँचे स्थान पर एकत्र करें।

गोबर की खाद को प्रयोग की मात्रा व विधि

- ✓ प्रति हेक्टेयर खेतों में 10-12 टन मात्रा प्रयोग करें।
- ✓ फसल बुवाई के एक माह पूर्व खेतों में फैलाकर तुरन्त जुताई करके मिला देना चाहिए।

अच्छी गोबर खाद तैयार करने के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान देना आवश्यक है:-

1. गोबर खाद बनाने के लिए पौधों के अवशेष, गोबर, जानवरों का बचा हुआ चारा आदि सभी वस्तुओं का प्रयोग करना चाहिए।
2. गोबर खाद बनाने के लिए संस्तुत गड्ढा या ढेर विधि अपनानी चाहिए। सारे जैविक पदार्थों को अच्छी तरह मिलाकर गड्ढे को भरना चाहिए या ढेर बनाना चाहिए तथा उपयुक्त मात्रा में जल डालते रहना चाहिए।
3. गड्ढे या ढेर में पदार्थों को आवश्यकतानुसार अच्छी तरह पलटना चाहिए और उचित मात्रा में नमी रखनी चाहिए। यदि नमी कम है तो पलटते समय पानी डाला जा सकता है। पलटने की क्रिया से जैविक पदार्थ जल्दी सड़ते हैं और खाद में पोषक तत्वों की मात्रा बढ़ती है।

गोबर खाद से लाभ

1. **कार्बनिक पदार्थ की उपलब्धता में वृद्धि:** कार्बनिक पदार्थ ही एक मात्र ऐसा स्रोत है, जिसके द्वारा मृदा में उपस्थित विभिन्न पोषक तत्व फसलों को उपलब्ध हो पाते हैं। गोबर खाद में लगभग सभी आवश्यक पोषक तत्वों के साथ नाइट्रोजन की अधिक मात्रा पाई जाती है। मृदा के भौतिक गुणों में सुधार, मृदा में गोबर खाद को मिलाने से मृदा की परत में कार्बनिक पदार्थ की वृद्धि से मृदा सतह की कठोरता कम होती है तथा जल धारण क्षमता एवं मृदा में वायु संचरण में वृद्धि होती है।
2. **मृदा के रासायनिक एवं भौतिक गुण में सुधार:** गोबर खाद को मृदा में मिलाने से मृदा के रासायनिक गुण जैसे उपलब्ध पोषक तत्वों की मात्रा एवं उपलब्धता मृदा की विद्युत चालकता एवं मृदा पीएच

में सुधार होता है। अतः मृदा स्वास्थ्य पर्यावरण एवं फसल उत्पादकता को देखते हुए गोबर को जलाने की बजाए भूमि में मिला देने से काफी लाभ होता है। फसल अवशेषों के जैविक विघटन के फलस्वरूप वाली सैकराईजों का निर्माण होता है, जिससे मृदा-संरचना में सुधार होता है। गोबर खाद का प्रभाव कम्पोस्ट आदि की तुलना में अधिक होता है। गोबर खाद रन्ध्र छिद्रों में वृद्धि, मृदा में जल के प्रवाह तथा मृदा की जल धारण क्षमता में अभिवृद्धि होती है।

3. **मृदा उर्वरता में वृद्धि:** गोबर खाद का सीधा प्रभाव तो मृदा उर्वरता वृद्धि पर पड़ता है, साथ ही इसके अवशिष्ट प्रभाव से भी मृदा-उर्वरता में वृद्धि होती है। मृदा में गोबर खाद मिलाने से पोषक तत्व पुनः भूमि को प्राप्त हो जाते हैं।
4. **मृदा अणुजीवों की क्रियाशीलता में सार्थक वृद्धि:** गोबर खाद को मृदा में मिला देने पर विभिन्न मृदा अणुजीवों द्वारा कार्बन एवं अन्य तत्वों के खनिजीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। खनिजीकरण के कारण अणुजीवों की संख्या कई गुना बढ़ जाती है और कार्बन डाई ऑक्साइड का निर्माण होता है। ये अणुजीवी असहजीवी नत्रजन यौगिकीकरण करने वाले जीवाणु होते हैं, जो मृदा नत्रजन की पूर्ति करने में उपयोगी सिद्ध होती है।

कृषि में गोबर के अन्य उपयोग

- ❖ **पंचगव्य कृषि:** पंचगव्य गाय से प्राप्त पांच उत्पादों जैसे; गोबर, गौ-मूत्र, दूध, दही और घी से तैयार किया गया एक विशेष भूमि सुधारक है। पंचगव्य के उत्पादन की लागत लगभग रु. 25-35 प्रति लीटर। पंचगव्य में कई उपयोगी सूक्ष्मजीव जैसे कवक, बैक्टीरिया, एक्टिनोमाइसेट्स और विभिन्न सूक्ष्म पोषक तत्व होते हैं। सूत्रीकरण मृदा को समृद्ध करने के लिए टॉनिक के रूप में कार्य करता है, गुणवत्ता उत्पादन के साथ पौधे की शक्ति को प्रेरित करता है। पंचगव्य एक जैविक उत्पाद है, इसका उपयोग करने पर फसल वृद्धि, कीट एवं रोगों पर प्रभावकारी असर होता है।





- ❖ **जीवामृत:** जीवामृत तैयार करने में गाय का गोबर एवं गोमूत्र, दाल का आटा, स्थानीय मृदा को आपस में मिलाया जाता है। जीवामृत कवक एवं जीवाणु जनित बीमारियों से पौधों की रक्षा करता है। श्री पालेकर का सुझाव है कि जीवामृत का संक्रमण केवल आरम्भ के 3 वर्षों के लिए ही आवश्यक है, जिसके बाद यहाँ प्रणाली आत्मनिर्भर हो जाती है।
- ❖ **बीजामृत:** इसका प्रयोग बीजों, पौध या पौधारोपण के अन्य पदार्थों (जैसे गन्ना के टुकड़ों) को उपचारित करने के लिए किया जाता है। यह पौधों की जड़ों को कवक तथा मृदा जनित, बीज जनित

बीमारियों से रक्षा करता है। ये जीव मानसून के बाद पौधों को प्रभावित करते हैं। इसे भी गाय के गोबर, गोमूत्र मिलाकर तैयार किया जाता है।

सारांश

भारतीय कृषि की दीर्घकालिक स्थिरता के लिए कृषि में गोबर प्रबंधन महत्वपूर्ण है। अतः गोबर एवं कृषि

अपशिष्टों को जलाने पर प्रतिबंध लगाना चाहिए तथा इनका उपयोग जैविक खाद बनाने के लिए किया जाना चाहिए। मृदा स्वास्थ्य तथा पर्यावरण प्रदूषण को कम करने के लिए किसानों को जैविक कृषि में उपयोग किया जाना अति आवश्यक है।





कम लागत एवं पानी में चिया सीड की खेती किसानों के लिए आय का नया स्रोत

डा. द्वारका- अतिथि शिक्षक, कीटशास्त्र विभाग, जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, कृषि महाविद्यालय, पन्ना, मध्य प्रदेश

डा. आनन्द मिलन- अतिथि शिक्षक, पौधरोग विभाग, जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, कृषि महाविद्यालय, पन्ना, मध्य प्रदेश

शोभाराम ठाकुर- वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी, एक्रिप परियोजना तिल फसल, कृषि महाविद्यालय, टीकमगढ़, मध्य प्रदेश

राजकुमार राठौर- पीएचडी शोधार्थी, कीटशास्त्र विभाग, आर.वी.एस.के.वी.वी., ग्वालियर, मध्य प्रदेश

शिवानी सुमन- एग्रीकल्चर एक्सटेंशन ऑफीसर, किसान कल्याण एवं कृषि विभाग, भोपाल, मध्य प्रदेश

मनोज कुमार अहिरवार- कृषि विज्ञान केन्द्र प्रमुख, दमोह, मध्य प्रदेश

निशा चढ़ार- एम.एससी.(बॉटनी), महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, शासकीय स्नातकोत्तर उत्कृष्ट महाविद्यालय, टीकमगढ़, मध्य प्रदेश

विकासखंड नंदलालपुरा के किसान नारायण दास पटेल ने पारंपरिक फसलों के स्थान पर चिया सीड की खेती शुरू की। यह फसल कम पानी और कम लागत में लगभग 90-110 दिनों में तैयार हो जाती है। वैज्ञानिक तरीके से खेती करने पर प्रति एकड़ लगभग 6 क्विंटल उत्पादन प्राप्त हुआ। उनकी सफलता से प्रेरित होकर क्षेत्र के 20 अन्य किसानों ने भी चिया सीड की खेती अपनाई, जिससे किसानों को अतिरिक्त आय का नया स्रोत प्राप्त हुआ।

किसान का विवरण:

नाम: नारायण दास पटेल,

ग्राम: नंदलालपुरा,

विकासखंड: राजनगर, मध्यप्रदेश।

पृष्ठभूमि/समस्या

बुंदेलखंड क्षेत्र में सीमित जल संसाधनों तथा बार-बार होने वाले मौसम परिवर्तन के कारण पारंपरिक फसलों जैसे गेहूं और चना की खेती किसानों के लिए चुनौतीपूर्ण होती जा रही थी। पानी की अधिक आवश्यकता और बढ़ती उत्पादन लागत के कारण किसानों को पर्याप्त लाभ नहीं मिल पा रहा था। ऐसे में कम पानी और कम लागत में उगाई जा सकने वाली वैकल्पिक फसल की आवश्यकता महसूस की जा रही थी। प्रगतिशील किसान ने नवाचार आधारित खेती अपनाकर क्षेत्र में पहचान बनाई है। किसान ने परंपरागत खेती के साथ नई सोच अपनाई। नई तकनीक अपनाई। नई फसल के तौर पर चिया सीड की खेती शुरू की। वैज्ञानिक तरीके से बुवाई की। सफल उत्पादन लिया। प्रगतिशील किसान



नारायण दास पटेल ने बताया कि एक एकड़ में 4 से 5 क्विंटल बीज उत्पादन हो जाता है। इस फसल को जानवर नुकसान नहीं पहुंचाते। सही देखभाल से प्रति एकड़ 6 क्विंटल तक उत्पादन मिल रहा है। कम लागत और कम पानी में फसल 90 से 110 दिनों में तैयार हो जाती है। पानी की जरूरत भी कम रहती है। इसी वजह से बुंदेलखंड जैसे अर्ध-शुष्क क्षेत्रों के लिए इसे उपयुक्त माना जा रहा है। उन्होंने बताया कि चिया सीड साल में दो बार बोई जा सकती है। इससे किसानों को अतिरिक्त आय का मौका मिलता है। किसान ने बताया कि पहले वे गेहूं और चना की खेती करते थे। मौसम में बार-बार होने वाले बदलाव और इल्ली के प्रकोप के कारण लगातार चने की खेती बंद कर दी। अब चना के स्थान पर चिया सीड की खेती को अपनाया है। इससे उनकी खेती लाभ का धंधा बन गई है।

हस्तक्षेप

प्रगतिशील किसान नारायण दास पटेल ने पारंपरिक फसलों के स्थान पर चिया सीड की खेती को अपनाया। उन्होंने वैज्ञानिक पद्धति से इसकी बुवाई की और अन्य किसानों को भी इसके लिए प्रेरित किया। उन्होंने निम्न तकनीकों का उपयोग किया-

- ❖ प्रति एकड़ लगभग 4-5 किलोग्राम बीज का उपयोग।
- ❖ कम पानी और कम लागत में खेती।
- ❖ लगभग 90 से 110 दिनों में फसल तैयार।
- ❖ जैविक खाद एवं उचित फसल प्रबंधन।
- ❖ खेत की नियमित निगरानी और देखभाल।

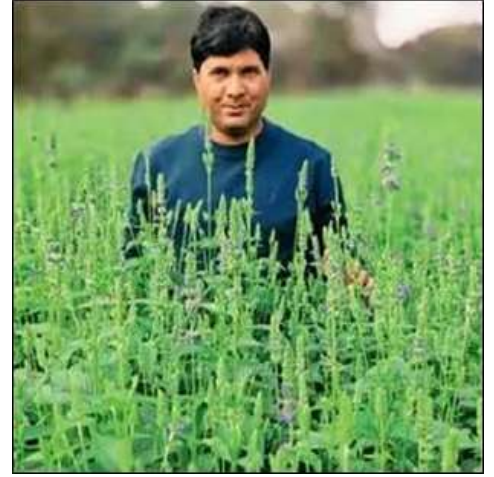
परिणाम

- ❖ प्रति एकड़ लगभग 6 क्विंटल तक उत्पादन प्राप्त हुआ।
- ❖ चिया सीड की बाजार में अच्छी मांग के कारण किसानों को अधिक लाभ मिला।
- ❖ इस पहल से प्रेरित होकर क्षेत्र के लगभग 20 किसानों ने भी चिया सीड की खेती शुरू कर दी।

- ❖ यह फसल कम पानी वाले क्षेत्रों के लिए उपयुक्त साबित हुई।

आर्थिक लाभ

- ❖ चिया सीड की बाजार में अच्छी कीमत प्राप्त होती है।
- ❖ सामान्य चिया सीड लगभग 600 रुपये प्रति किलो तथा ऑर्गेनिक चिया सीड लगभग 1000 रुपये प्रति किलो तक बिक रहा है।
- ❖ इससे किसानों की आय में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है।
- ❖ ऑर्गेनिक चिया सीड एक हजार रु. किलो बिक रहा



इस पहल से प्रभावित होकर क्षेत्र के 20 अन्य किसानों ने भी चिया सीड की खेती शुरू कर दी है। नारायण दास पटेल ने किसानों से जैविक खाद के उपयोग के साथ यह फसल अपनाने को कहा है। इससे लागत कम रहती है। चिया सीड ओमेगा-3, फाइबर और प्रोटीन से भरपूर है। बढ़ती मांग के कारण इसकी कीमत अधिक है। बाजार में चिया सीड के बीज की कीमत 1 हजार रुपए किलो है। वहीं सामान्य चिया सीड 600 रुपए प्रति किलो तक बिक रहा है।

निष्कर्ष

नारायण दास पटेल द्वारा अपनाई गई चिया सीड की खेती कम पानी वाले क्षेत्रों के किसानों के लिए एक लाभकारी विकल्प बनकर सामने आई है। यह फसल कम लागत, कम अवधि और अच्छी बाजार कीमत के कारण किसानों की आय बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।



कोदरा मिलेट: पारंपरिक अनाज से आधुनिक रसोई तक पौष्टिक रेसिपीज़ का खजाना

रवीना रानी, डॉ वीनू सांगवान एवं प्रियंका
खाद्य एवं पोषण विज्ञान विभाग
चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

भारत की पारंपरिक खाद्य संस्कृति में मोटे अनाज (मिलेट्स) का विशेष स्थान रहा है। इन्हीं में से एक महत्वपूर्ण अनाज है कोदरा मिलेट (कोदो मिलेट)। पहले के समय में ग्रामीण क्षेत्रों में यह दैनिक भोजन का हिस्सा था, लेकिन आधुनिक जीवनशैली के कारण इसका उपयोग कम हो गया। अब स्वास्थ्य के प्रति बढ़ती जागरूकता के कारण कोदरा मिलेट फिर से लोकप्रिय हो रहा है।

कोदरा मिलेट एक ग्लूटेन-मुक्त, उच्च फाइबर और पोषक तत्वों से भरपूर अनाज है, जो संतुलित आहार का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन सकता है। यह शरीर को ऊर्जा प्रदान करने के साथ-साथ कई स्वास्थ्य लाभ भी देता है।

कोदरा मिलेट का पोषण महत्व

कोदरा मिलेट में कई आवश्यक पोषक तत्व पाए जाते हैं, जैसे—

- उच्च मात्रा में डायटरी फाइबर
- प्रोटीन
- आयरन और कैल्शियम
- फॉस्फोरस और मैग्नीशियम
- एंटीऑक्सीडेंट

इन पोषक तत्वों के कारण यह शरीर की प्रतिरक्षा क्षमता को मजबूत बनाने और पाचन स्वास्थ्य को सुधारने में सहायक होता है।
स्वास्थ्य के लिए लाभ

- **मधुमेह नियंत्रण में सहायक** – इसका ग्लाइसेमिक इंडेक्स कम होता है।
- **पाचन क्रिया को बेहतर बनाता है** – फाइबर की अधिक मात्रा कब्ज और अपच को कम करती है।
- **हृदय स्वास्थ्य के लिए लाभकारी** – कोलेस्ट्रॉल के स्तर को संतुलित रखने में मदद करता है।
- **वजन प्रबंधन में सहायक** – लंबे समय तक पेट भरा हुआ महसूस होता है।

कोदरा मिलेट से बनने वाली अनोखी रेसिपीज़

1. कोदरा मिलेट चीला

सामग्री

- 1 कप कोदरा मिलेट का आटा
- 1 कटा हुआ प्याज
- 1 हरी मिर्च



- 1 छोटा टमाटर
- हरा धनिया
- नमक स्वादानुसार
- ½ छोटा चम्मच जीरा
- पानी आवश्यकतानुसार

बनाने की विधि

1. एक बाउल में कोदरा मिलेट का आटा लें।
2. इसमें प्याज, टमाटर, हरी मिर्च और हरा धनिया मिलाएँ।
3. नमक, जीरा और पानी डालकर घोल तैयार करें।
4. तवे पर थोड़ा तेल लगाकर घोल फैलाएँ।
5. दोनों तरफ से सुनहरा होने तक पकाएँ।
6. हरी चटनी के साथ परोसें।

2. कोदरा मिलेट वेज पुलाव

सामग्री

- 1 कप कोदरा मिलेट
- 1 कप मिश्रित सब्जियाँ (गाजर, मटर, बीन्स)
- 1 छोटा चम्मच जीरा
- 1 तेजपत्ता
- 1 छोटा चम्मच अदरक-लहसुन पेस्ट
- नमक स्वादानुसार
- 2 कप पानी
- 1 छोटा चम्मच घी या तेल

बनाने की विधि

1. कोदरा मिलेट को अच्छी तरह धोकर 20 मिनट तक भिगो दें।
2. कुकर में घी गरम करके जीरा और तेजपत्ता डालें।
3. अदरक-लहसुन पेस्ट और सब्जियाँ डालकर हल्का भूनें।
4. अब मिलेट डालकर 1-2 मिनट चलाएँ।
5. पानी और नमक डालकर 2-3 सीटी आने तक पकाएँ।
6. गरम-गरम पुलाव परोसें।

3. कोदरा मिलेट लड्डू

सामग्री

- 1 कप कोदरा मिलेट का आटा

- ½ कप गुड़
- 2 बड़े चम्मच घी
- 6-7 काजू (कटे हुए)
- ½ छोटा चम्मच इलायची पाउडर

बनाने की विधि

1. पैन में घी गरम करके कोदरा आटा धीमी आंच पर भूनें।
2. जब खुशबू आने लगे तो उसमें काजू डालें।
3. अब गुड़ मिलाकर अच्छी तरह मिश्रित करें।
4. इलायची पाउडर डालें।
5. हल्का ठंडा होने पर छोटे-छोटे लड्डू बना लें।

4. कोदरा मिलेट सलाद

सामग्री

- 1 कप उबला हुआ कोदरा मिलेट
- 1 खीरा (कटा हुआ)
- 1 टमाटर
- 1 प्याज
- नींबू का रस
- काली मिर्च
- नमक

बनाने की विधि

1. एक बाउल में उबला हुआ कोदरा मिलेट लें।
2. उसमें खीरा, टमाटर और प्याज मिलाएँ।
3. नमक, काली मिर्च और नींबू का रस डालें।
4. अच्छी तरह मिलाकर ठंडा-ठंडा परोसें।

निष्कर्ष

कोदरा मिलेट एक ऐसा पारंपरिक अनाज है जो स्वास्थ्य और स्वाद दोनों का बेहतरीन संतुलन प्रदान करता है। इसे विभिन्न रेसिपीज के माध्यम से दैनिक भोजन में शामिल करके पोषण स्तर को बेहतर बनाया जा सकता है। आधुनिक रसोई में कोदरा मिलेट का उपयोग बढ़ाकर हम स्वस्थ जीवनशैली के साथ-साथ अपनी पारंपरिक खाद्य विरासत को भी सुरक्षित रख सकते हैं।





मृदा सौरकरण

बरसाती मौसम में टमाटर की नर्सरी तैयार करने की एक सर्वोत्तम कृषि पद्धति

डॉ. मनोज कुमार प्रजापति- सहायक प्रोफेसर कृषि और संबद्ध विज्ञान संकाय, यूनाइटेड यूनिवर्सिटी, झलवा रावतपुर प्रयागराज, उत्तर प्रदेश
गोविंद विश्वकर्मा*- मृदा विज्ञान विभाग, डॉ. राजेंद्र प्रसाद केंद्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, समस्तीपुर, बिहार

बरसाती मौसम में टमाटर की नर्सरी में मिट्टी को सौर ऊर्जा से उपचारित करने के लिए, नम, ऊंचे क्यारियों (10-15 सेमी) को गर्मी के सबसे गर्म महीनों (मई-जून) के दौरान 4-6 सप्ताह के लिए पतली (100-150 गेज) पारदर्शी पॉलीथीन शीट से ढक दिया जाता है। इससे सौर ताप बेहतर विकिरण संचरण के कारण अवशोषित हो जाता है, जिससे मिट्टी में पनपने वाले कई रोगजनक (जैसे कि फफूंद रोग और मुरझान रोग) और खरपतवार नष्ट हो जाते हैं, और 10-15 सेमी ऊंचे क्यारियों में रोपने के लिए स्वस्थ पौधे सुनिश्चित होते हैं।

टमाटर की नर्सरी के लिए मिट्टी को सौर ताप देने की प्रक्रिया

नर्सरी बेड:

पौध उगाने के लिए नर्सरी बेड को समतल करें और सौर ताप देने से पहले सतह पर मौजूद कंकड़ हटा दें। मिट्टी में आवश्यक मात्रा में जैविक खाद (FYM) मिलाएं और 5 लीटर/वर्ग मीटर की दर से सिंचाई करें। बेड को 100-150 गेज की पारदर्शी पॉलीथीन शीट से ढक दें। पॉलीथीन के किनारों को मिट्टी से सील कर दें ताकि यह अपनी जगह पर रहे और तापमान और नमी बनी रहे। मई से जून के महीनों में, जब धूप तेज हो, तो बेड को 4-6 सप्ताह तक ढका रहने दें। यह भी ध्यान रखें कि शीट मिट्टी की सतह के साथ पूरी तरह से संपर्क में रहे ताकि मिट्टी और

पॉलीथीन शीट के बीच हवा के बुलबुले न बनें। शीट को 20-30 दिनों तक इसी तरह रखें। इसे आवारा जानवरों और पक्षियों से बचाएं। सौर ताप देने की अवधि के बाद, शीट हटा दें और बेड बुवाई और रोपाई के लिए तैयार है।

टमाटर, मिर्च और बैंगन के लिए नर्सरी बेड तैयार करना

बरसात के मौसम में टमाटर, बैंगन और मिर्च की नर्सरी तैयार करने के लिए, मुख्य खेत में रोपाई के लिए प्रति हेक्टेयर लगभग 100-200 वर्ग मीटर (2.5 से 5%) ऊंचे बेड की आवश्यकता होती है। बारिश के दौरान पौधों को सड़ने से बचाने के लिए अच्छी जल निकासी के लिए 10-15 सेमी ऊंचे बेड आवश्यक हैं। 7.5-10 × 1.0 मीटर लंबाई और चौड़ाई वाले बेड बनाए जा सकते हैं। 3 x 0.6 मीटर आकार और 10-15 सेमी ऊंचाई वाले बेड भी तैयार किए जा सकते हैं। सिंचाई, निराई आदि कार्यों के लिए दो बेड के बीच लगभग 70 सेमी की दूरी रखी जाती है।

पौधों का उगाना

एक हेक्टेयर भूमि के लिए लगभग 250-300 ग्राम बीज पर्याप्त होते हैं। बुवाई 10-15 सेमी की दूरी पर पंक्तियों में पतली परत में की जानी चाहिए। बीजों को 2-3 सेंटीमीटर की गहराई पर बोया जाता है और मिट्टी की एक पतली परत से ढक दिया जाता है। इसके बाद क्यारियों को आवश्यक तापमान और नमी बनाए रखने के लिए सूखी पुआल, घास या



गन्ने के पत्तों से ढक देना चाहिए। अंकुरण पूरा होने तक आवश्यकतानुसार पानी देना चाहिए। अंकुरण पूरा होने के तुरंत बाद सूखी पुआल या घास की परत हटा दी जाती है। नर्सरी में अंतिम सप्ताह के दौरान, पौधों को थोड़ा पानी कम देकर कठोर बनाया जा सकता है। 5-6 असली पत्तियां वाले पौधे बोने के 4 सप्ताह के भीतर रोपण के लिए तैयार हो जाते हैं।

बरसाती मौसम में नर्सरी प्रबंधन

सौर उपचार के बाद: पॉलीथीन शीट हटाने के बाद, गहरी जुताई से बचें ताकि नीचे की परतों से खरपतवार के बीज ऊपर न आएं।

बीज उपचार:

टमाटर के बीजों को बोने से पहले ट्राइकोडर्मा विरिडे 1.50% डब्ल्यूपी (4 ग्राम/किग्रा) या कार्बेन्डाजिम (2 ग्राम/किग्रा) से उपचारित करें। या टमाटर/मिर्च और बैंगन के बीजों को मुरझाने (फ्यूजेरियम ऑक्सीस्पोरम), सड़न रोग (पाइथियम एफेनिडेरमेटम) और जड़ सड़न रोग (राइजोक्टोनिया एसपीपी) से बचाने के लिए स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस 1.0% या 1.5 डब्ल्यूपी @ 5 ग्राम/किग्रा की दर से उपचारित करें। टमाटर/बैंगन/मिर्च के बीजों को फ्यूजेरियम मुरझाने से बचाने के लिए ट्राइकोडर्मा हारज़ियानम 1.0% डब्ल्यूपी @ 20 ग्राम/किग्रा की दर से उपचारित करें। मिर्च में सड़न रोग से बचाने के लिए मिर्च के बीजों को ट्राइकोडर्मा विरिडे 1.0% डब्ल्यूपी @ 4 ग्राम/किग्रा की दर से उपचारित करें। टमाटर के बीजों पर फ्यूजेरियम विल्ट रोग से बचाव के लिए ट्राइकोडर्मा विरिडे 0.5% WP @ 10 ग्राम/किलो का प्रयोग करें। फ्यूजेरियम विल्ट से बचाव के लिए बीजों पर ट्राइकोडर्मा विरिडे 1.5% WP @ 20 ग्राम/किलो का प्रयोग करें। बैंगन के बीजों पर जड़ सड़न/मुरझान/पौधे सड़ने (राइजोक्टोनिया बैटाटिकोला, स्क्लेरोटियम रोलफसी, फ्यूजेरियम ऑक्सीस्पोरम, राइजोक्टोनिया सोलानी) से बचाव के लिए ट्राइकोडर्मा विरिडे 1.0% WP @ 5 ग्राम/किलो का प्रयोग करें। टमाटर के बीजों पर अंकुरण मुरझान (फ्यूजेरियम ऑक्सीस्पोरम) और पौधे सड़ने (पाइथियम अफेनिडेरमेटम, राइजोक्टोनिया सोलानी) से बचाव के लिए ट्राइकोडर्मा विरिडे 1.0% WP @ 10 ग्राम/किलो का प्रयोग करें।

पौध संरक्षण:

नर्सरी क्षेत्र को 50% छायादार जाल से ढक दें और किनारों पर 40/50 मेश वाले कीटरोधी नायलॉन जाल का उपयोग करके कीटों से

बचाव करें ताकि कीटों (जैसे सफेद मक्खी, एफिड, जैसिड, लीफ माइनर, थ्रिप्स और लीफ हॉपर जैसे वायरस फैलाने वाले कीट) से सुरक्षा हो सके।

जल निकासी:

नर्सरी क्षेत्र में छाया न हो और उसे ऊंचा रखें ताकि जलभराव न हो, जिससे जड़ों को नुकसान पहुंचता है।

गलने से होने वाली क्षति से बचाव:

गलने से होने वाली क्षति से पौधों की मृत्यु से बचने के लिए, पहले बीज क्यारी को पानी से भिगो दें और फिर बैविस्टिन (15-20 ग्राम/10 लीटर पानी) से उपचारित करें। यदि पौधे मुरझाने लगें, तो मेटालेक्सिल (2.5 ग्राम/लीटर) से उपचारित करें।

नोट:

मृदा उपचार: 2.5 किलोग्राम स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस 1.0% या 1.5% डब्ल्यूपी को 62.5 किलोग्राम गोबर की खाद में मिलाकर एक हेक्टेयर भूमि पर समान रूप से फैला दें।

पौध जड़ उपचार: 10 ग्राम स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस 1.0% डब्ल्यूपी को एक लीटर पानी में मिलाकर टमाटर के पौध को कुछ मिनटों के लिए जड़ में डुबो दें।

मृदा सौर उपचार के लाभ

फफूंद रोगजनकों का नियंत्रण: सौर उपचार द्वारा कई मृदा जनित रोगजनकों को नियंत्रित किया जा सकता है। इनमें पाइथियम, फाइटोफथोरा, फ्यूजेरियम, राइजोक्टोनिया और स्क्लेरोटिनिया आदि कवक शामिल हैं।

नेमाटोड का नियंत्रण: सौर उपचार द्वारा मेलोइडोगाइन, हेटेरोडेरा, जिफिनेमा आदि नेमाटोड की संख्या में कमी लाई जा सकती है।

खरपतवारों का नियंत्रण: सौर उपचार द्वारा कई सामान्य खरपतवारों, विशेष रूप से वार्षिक खरपतवारों को प्रभावी ढंग से नियंत्रित किया जा सकता है। इनमें एकबीजपत्री पौधों में साइनोडोन डैक्टिलोन, साइपरस रोटंडस और डिजिटेरिया सिलियारिस तथा द्विबीजपत्री पौधों में क्रोटालारिया मुकोनाटा, इंडिगोफेरा हर्सुइटा और नॉक्सिया एसपीपी शामिल हैं।

पौधों की वृद्धि पर मृदा के सौर उपचार का प्रभाव: सौर उपचारित मृदा में स्वस्थ पौधों की बेहतर वृद्धि, फफूंद रोग और मुरझाने से बचाव, जड़ों का बेहतर विकास, खरपतवार के बीजों का कम प्रकोप और उपज क्षमता में वृद्धि जैसे कई लाभ देखे गए हैं।





जलवायु संवेदी नवाचारों से ऊसर भूमि का हरित पुनर्जागरण

डॉ. अवधेश कुमार सिंह- विषय वस्तु विशेषज्ञ (कृषि प्रसार),
आशुतोष श्रीवास्तव- प्रक्षेत्र सहायक
कृषि विज्ञान केन्द्र, प्रतापगढ़, उत्तर प्रदेश

भारतीय कृषि वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन, मृदा क्षरण, कृषि आदानों की बढ़ती लागत तथा घटती उत्पादकता जैसी बहुआयामी चुनौतियों का सामना कर रही है। गंगा के मैदानी क्षेत्रों में ऊसर एवं खारी भूमि की समस्या इन चुनौतियों को और अधिक गंभीर बना रही है। इन क्षेत्रों में मिट्टी का pH प्रायः 8.5 से 9.2 तक पहुँच जाने के कारण भूमि की उर्वरता अत्यंत कम हो जाती है, जिससे सामान्य फसलों का उत्पादन संभव नहीं रह जाता। परिणामस्वरूप किसान मजबूरी में सीमित फसल चक्र अपनाते हैं या केवल एक ही फसल लेने तक सीमित रह जाते हैं, जिसका सीधा प्रभाव उनकी आय, रोजगार के अवसरों तथा खाद्य सुरक्षा पर पड़ता है। उत्तर प्रदेश के जनपद प्रतापगढ़ अंतर्गत कालाकांकर विकासखंड का ग्राम छाछामऊ भी लंबे समय तक इसी समस्या से जूझता रहा। गांव की कुल कृषि भूमि का लगभग 62 प्रतिशत भाग ऊसर एवं खारी होने के कारण रबी मौसम में अनुपजाऊ बना रहता था और खेतों को परती छोड़ना किसानों की विवशता थी। इस स्थिति ने न केवल कृषि उत्पादन को बाधित किया, बल्कि ग्रामीण आजीविका और आर्थिक स्थिरता पर भी प्रतिकूल प्रभाव डाला।

किसान का परिचय

ग्राम छाछामऊ के निवासी श्री रोशन लाल मौर्य एक प्रगतिशील, परिश्रमी एवं नवाचार के प्रति सजग किसान हैं। उनकी आयु लगभग 55 वर्ष है और वे इंटरमीडिएट स्तर तक शिक्षित हैं। उनके पास

कुल 6 एकड़ सिंचित कृषि भूमि उपलब्ध है। प्रारंभिक दौर में वे पारंपरिक कृषि पद्धतियों के अंतर्गत केवल धान की एकल फसल की खेती करते थे। हालाँकि सीमित उत्पादकता, बढ़ती लागत और अपेक्षाकृत कम लाभ के कारण उन्हें यह अनुभव हुआ कि परंपरागत खेती उनके परिवार की आजीविका के लिए पर्याप्त नहीं है। इसी कारण उन्होंने खेती को अधिक लाभकारी, टिकाऊ और जोखिम-न्यून बनाने के विकल्पों की खोज शुरू की। सीमित संसाधनों के बावजूद श्री मौर्य में नई तकनीकों, उन्नत कृषि पद्धतियों तथा नवाचारों को अपनाने की प्रबल इच्छाशक्ति रही, जिसने उन्हें परंपरागत किसान से एक प्रगतिशील किसान बनने की दिशा में प्रेरित किया।

क्षेत्र की कृषि समस्या

ग्राम छाछामऊ की कृषि भूमि में सोडियम की अत्यधिक मात्रा के कारण मृदा की भौतिक एवं रासायनिक संरचना गंभीर रूप से क्षतिग्रस्त हो चुकी थी। मिट्टी का पी. एच. अत्यधिक क्षारीय होने से बीजों का अंकुरण बाधित होता था, फसलों की जड़ें समुचित रूप से विकसित नहीं हो पाती थीं तथा आवश्यक सूक्ष्म पोषक तत्व पौधों के लिए अनुपलब्ध हो जाते थे। इन प्रतिकूल परिस्थितियों का सीधा प्रभाव फसल उत्पादकता पर पड़ा, जिसके परिणामस्वरूप धान की औसत उपज मात्र 20-22 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक सीमित रह गई। इसके अतिरिक्त, रबी मौसम में नमी संरक्षण और मृदा उपयुक्तता के अभाव के कारण खेती



करना लगभग असंभव माना जाता था, जिससे अधिकांश कृषि भूमि परती छोड़नी पड़ती थी।

नवाचार की शुरुआत एवं वैज्ञानिक सहयोग

इस गंभीर समस्या के समाधान की दिशा में श्री रोशन लाल मौर्य ने सक्रिय पहल करते हुए कृषि विज्ञान केंद्र, प्रतापगढ़ तथा जलवायु अनुरूप कृषि पर राष्ट्रीय नवाचार (निकरा) परियोजना से जुड़े वैज्ञानिकों से संपर्क स्थापित किया। उनके खेतों की मृदा का वैज्ञानिक परीक्षण कर विस्तृत विश्लेषण किया गया तथा प्राप्त परिणामों के आधार पर विशेषज्ञों द्वारा तकनीकी मार्गदर्शन प्रदान किया गया। मृदा परीक्षण एवं वैज्ञानिक परामर्श से यह तथ्य स्पष्ट हुआ कि यदि ऊसर एवं खारी भूमि की विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए उपयुक्त तकनीकों, वैज्ञानिक फसल प्रबंधन पद्धतियों तथा अनुकूल किस्मों का चयन किया जाए, तो इस प्रकार की भूमि की उत्पादक क्षमता को पुनः बहाल किया जा सकता है। इसी बिंदु से श्री मौर्य की नवाचार-आधारित कृषि यात्रा का शुभारंभ हुआ, जिसने आगे चलकर उनके खेतों और आय दोनों में उल्लेखनीय परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त किया।

अपनाई गई जलवायु-संवेदी तकनीकें

श्री मौर्य द्वारा सुधार प्रक्रिया की शुरुआत सर्वप्रथम लेजर गाइडेड लैंड लेवलर की सहायता से खेतों के समतलीकरण से की गई। इससे खेत में सिंचाई जल का समान एवं नियंत्रित वितरण संभव हुआ, जिसके परिणामस्वरूप न केवल जल उपयोग दक्षता में सुधार हुआ, बल्कि सिंचाई जल की उल्लेखनीय बचत भी हुई। इसके पश्चात धान की कटाई के उपरांत पराली को जलाने के स्थान पर उसे खेत में समान रूप से फैलाकर लगभग 30 दिनों तक नमी बनाए रखी गई। इस प्रक्रिया से मृदा में जैविक पदार्थों की उपलब्धता बढ़ी तथा सूक्ष्मजीवी गतिविधियों को

प्रोत्साहन मिला, जिससे मृदा स्वास्थ्य में सकारात्मक परिवर्तन आया। खरीफ मौसम के दौरान ऊसर भूमि के लिए उपयुक्त धान की किस्म सी.एस.आर.-36 की रोपाई की गई। वहीं रबी मौसम में ऊसर एवं खारी भूमि की प्रतिकूल परिस्थितियों को सहन करने वाली उन्नत किस्मों—गेहूँ (के.आर.एल.-210), सरसों (सी.एस.-58) तथा चना (करनाल चना-1)—की बुवाई की गई। इन वैज्ञानिक फसल एवं किस्म चयन उपायों ने ऊसर भूमि की उत्पादकता को पुनर्जीवित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

फसल चक्र एवं खेती की प्रक्रिया

नवाचार के अंतर्गत सर्वप्रथम खेतों का लेजर लेवलिंग तकनीक द्वारा समतलीकरण किया गया, जिससे खेत की सतह समरूप बनी और जल प्रबंधन में सुधार संभव हुआ। इसके उपरांत धान की कटाई के बाद फसल अवशेषों का वैज्ञानिक ढंग से प्रबंधन किया गया, जिससे मृदा में जैविक तत्वों की मात्रा बढ़ी और मृदा स्वास्थ्य में सुधार हुआ। खरीफ मौसम में धान की सफल खेती के पश्चात रबी मौसम में गेहूँ, सरसों एवं चना जैसी फसलों की बुवाई की गई। इस प्रकार, जो क्षेत्र पूर्व में धान की कटाई के बाद परती पड़ा रहता था, वह अब धान-रबी फसल प्रणाली में परिवर्तित हो गया। परिणामस्वरूप फसल तीव्रता में उल्लेखनीय वृद्धि हुई, जिससे भूमि की उत्पादकता और किसानों की आय दोनों में सकारा

त्मक परिवर्तन देखने को मिला।



उत्पादन एवं आय में वृद्धि

वैज्ञानिक एवं नवाचारी तकनीकों अपनाने के उपरांत फसल उत्पादकता तथा कृषक आय में उल्लेखनीय और प्रत्यक्ष सुधार दर्ज किया गया। प्रति हेक्टेयर शुद्ध लाभ, जो पूर्व में लगभग 60,749 रुपये तक सीमित था, बढ़कर लगभग 1,32,942 रुपये प्रति हेक्टेयर हो गया, जो आय में लगभग दोगुनी वृद्धि को दर्शाता है। इसके अतिरिक्त, ग्राम छाछामऊ में इन तकनीकों के सफल प्रदर्शन एवं प्रसार के फलस्वरूप लगभग 52 हेक्टेयर क्षेत्र को इस नवाचार के अंतर्गत लाया गया, जिससे गांव स्तर पर कुल 16.12 लाख रुपये की अतिरिक्त आय सृजित हुई। यह उपलब्धि न केवल ऊसर एवं खारी भूमि सुधार की संभावनाओं को प्रमाणित करती है, बल्कि किसानों की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ करने में इन तकनीकों की प्रभावशीलता को भी स्पष्ट रूप से रेखांकित करती है।



सम्मान एवं पहचान

श्री रोशन लाल मौर्य को भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद कानपुर द्वारा आयोजित जलवायु अनुरूप कृषि पर राष्ट्रीय नवाचार (निकरा) समीक्षा कार्यशाला में सहभागिता का अवसर भी प्राप्त हुआ। उनके द्वारा किये गए नवोन्मेषी कार्य के लिए भाकृअनुपकेंद्रीय बारानी - कृषि अनुसंधान संस्थान द्वारा सर्वश्रेष्ठ नवोन्मेषी कृषक पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

निष्कर्ष

ग्राम छाछामऊ, विकासखंड कालाकांकर (जनपद प्रतापगढ़) में श्री रोशन लाल मौर्य द्वारा अपनाई गई जलवायु-संवेदी एवं वैज्ञानिक कृषि तकनीकों ने यह सिद्ध कर दिया कि ऊसर एवं खारी भूमि जैसी चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों में भी योजनाबद्ध प्रयासों, मृदा परीक्षण आधारित प्रबंधन तथा उपयुक्त फसल-किस्म चयन के माध्यम से कृषि को लाभकारी एवं टिकाऊ बनाया जा सकता है। लेजर लेवलिंग, फसल अवशेष प्रबंधन, मृदा सुधार उपायों तथा ऊसर सहनशील किस्मों के समन्वित प्रयोग से न केवल भूमि की उत्पादकता पुनर्जीवित हुई, बल्कि फसल तीव्रता में भी उल्लेखनीय वृद्धि दर्ज की गई। जो भूमि पूर्व में रबी मौसम में परती रहती थी, वह अब बहु-फसली प्रणाली में परिवर्तित हो चुकी है। परिणामस्वरूप प्रति हेक्टेयर शुद्ध आय लगभग दोगुनी हुई, जो आर्थिक सशक्तिकरण का स्पष्ट संकेत है। इस नवाचार का प्रभाव केवल एक कृषक तक सीमित नहीं रहा, बल्कि ग्राम स्तर पर सैकड़ों किसानों द्वारा तकनीक अपनाए जाने से सामुदायिक स्तर पर भी सकारात्मक परिवर्तन देखने को मिला। अतिरिक्त रोजगार सृजन, पलायन में कमी, खाद्य एवं पोषण सुरक्षा में सुधार तथा किसानों के आत्मविश्वास में वृद्धि इस पहल की व्यापक सामाजिक उपलब्धियाँ हैं। यह सफलता स्पष्ट रूप से दर्शाती है कि यदि वैज्ञानिक संस्थानों के मार्गदर्शन में स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप तकनीकों को अपनाया जाए, तो ऊसर एवं खारी भूमि भी समृद्धि का आधार बन सकती है।



रोशन लाल की भूमि में होने वाले परिवर्तन से उनकी आय में वृद्धि			
वितरण		2015	2023
औसत शुद्ध	(धान-गेहूँ)	31150	66533
आय/हेक्टेयर	(धान-सरसों)	29599	66409
औसत शुद्ध आय / हेक्टेयर		60749	132942
वितरण		2015	2023
उच्च पीएच के कारण परती भूमि		0.8	00
एकल फसल		0.5	00
बहु-फसली खेती		00	1.3

रोजगार सृजन एवं सामाजिक प्रभाव

नवाचारों के परिणामस्वरूप गांव में प्रतिवर्ष लगभग 2300 मानव-दिवस का अतिरिक्त रोजगार सृजित हुआ। इससे ग्रामीण पलायन में कमी आई तथा किसानों का आत्मविश्वास बढ़ा। गांव में अनाज, दलहन एवं तिलहन उत्पादन बढ़ने से खाद्य एवं पोषण सुरक्षा भी सुदृढ़ हुई।

अन्य किसानों पर प्रभाव एवं विस्तार

श्री रोशन लाल मौर्य की सफलता से प्रेरित होकर ग्राम छाछामऊ के 128 किसानों तथा आसपास के गांवों के लगभग 110 किसानों ने इन जलवायु-संवेदी तकनीकों को अपनाया। जलवायु अनुरूप कृषि पर राष्ट्रीय नवाचार (निकरा) गांव में लगभग 52 हेक्टेयर तथा आसपास के 10 गांवों में औसतन 30-40 हेक्टेयर क्षेत्र में यह तकनीकें सफलतापूर्वक लागू की गईं।





शहतूत की व्यावसायिक खेती: एक वैज्ञानिक मार्गदर्शिका

विकास चंद्रा- सहायक प्राध्यापक, उद्यान विभाग (फल एवं फल प्रौद्योगिकी), बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर
शेषांक कुमार- सहायक प्राध्यापक, उद्यान विभाग (पुष्प विज्ञान एवं वास्तुकला), बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर
स्वप्निल भारती- शोध छात्र, उद्यान विभाग (फल एवं फल प्रौद्योगिकी) बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर
शिवराज कुमार वर्मा एवं अंकित सिंह- सहायक प्राध्यापक, उद्यान विज्ञान विभाग, उदय प्रताप कॉलेज, वाराणसी, (उ. प्र.)

परिचय

शहतूत की खेती मुख्यतः रेशम उत्पादन के उद्देश्य से की जाती है, क्योंकि इसकी पत्तियाँ रेशमकीट के लिए अनिवार्य एवं उच्च पोषणयुक्त आहार स्रोत के रूप में कार्य करती हैं, जिससे गुणवत्तापूर्ण कोकून उत्पादन सुनिश्चित होता है। रेशम उद्योग के अतिरिक्त, इसके फल पोषक तत्वों एवं जैव सक्रिय यौगिकों से समृद्ध होते हैं, जबकि इसकी लकड़ी हल्के निर्माण एवं कृषि उपयोगों में प्रयुक्त होती है। विभिन्न प्रजातियों में पाए जाने वाले औषधीय गुण इसके बहुआयामी आर्थिक महत्व को और अधिक सुदृढ़ करते हैं। वनस्पति दृष्टि से यह एक मध्यम से ऊँचे कद का पर्णपाती वृक्ष है, जिसकी औसत ऊँचाई लगभग 12-18 मीटर (40-60 फीट) तक होती है। भारत में इसकी व्यावसायिक खेती मुख्यतः पंजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, पश्चिम बंगाल, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश तथा तमिलनाडु राज्यों में की जाती है, जहाँ की जलवायु परिस्थितियाँ रेशमकीट पालन एवं शहतूत उत्पादन के लिए अनुकूल मानी जाती हैं।

जलवायु एवं मृदा

शहतूत की सफल खेती उष्णकटिबंधीय से समशीतोष्ण जलवायु क्षेत्रों में की जा सकती है, जहाँ पर्यावरणीय परिस्थितियाँ इसकी

शाकीय वृद्धि एवं पर्ण उत्पादन के अनुकूल हों। इसके इष्टतम विकास हेतु 24-28 डिग्री सेल्सियस तापमान, 600-2500 मि.मी. वार्षिक वर्षा तथा 65-80 प्रतिशत सापेक्ष आर्द्रता उपयुक्त मानी जाती है। मृदा की दृष्टि से यह फसल गहरी, उपजाऊ एवं सुव्यवस्थित जल निकास वाली दोमट से चिकनी दोमट मिट्टी में उत्कृष्ट वृद्धि प्रदर्शित करती है। उच्च जलधारण क्षमता तथा पर्याप्त वायुसंचार युक्त मृदा इसकी जड़ वृद्धि एवं पोषक तत्व अवशोषण के लिए अनुकूल होती है। मृदा का आदर्श पी एच मान 6.2-6.8 (हल्का अम्लीय से तटस्थ) श्रेणी में होना चाहिए, जिससे पोषक तत्वों की उपलब्धता अधिकतम बनी रहे।

प्रवर्धन

शहतूत का प्रवर्धन प्रायः वानस्पतिक विधि, विशेषतः तना कटिंग द्वारा किया जाता है, जिससे मातृ पौधे के वांछित गुणों का समान रूप से संरक्षण सुनिश्चित होता है। प्रवर्धन हेतु सामान्यतः 6-8 माह पुरानी, लगभग 15 सेमी लंबाई वाली तथा 3-4 सुप्त कलिकाओं युक्त स्वस्थ एवं रोगमुक्त टहनियों का चयन किया जाता है। बीजजनित प्रवर्धन का उपयोग प्रायः आनुवंशिक विविधता सृजन एवं उन्नत किस्मों के विकास हेतु प्रजनन कार्यक्रमों में किया जाता है, क्योंकि इससे प्राप्त पौधों में वंशानुगत भिन्नता पाई जाती है।





फूल



फल

रोपण एवं दूरी

शहतूत के रोपण हेतु जून-जुलाई का समय उपयुक्त माना जाता है, क्योंकि इस अवधि में उपलब्ध मृदा आर्द्रता एवं अनुकूल तापमान पौधों की सफल स्थापना में सहायक होते हैं। रोपण के लिए सामान्यतः 35 × 35 × 35 सेमी आयाम वाले गड्ढों की तैयारी की जाती है, जिससे जड़ों के प्रारंभिक प्रसार एवं पोषक तत्व अवशोषण के

लोकप्रिय किस्में और उनकी उपज

वी-1: इस उन्नत किस्म में पत्तियाँ अंडाकार, चौड़ी एवं गहरे हरे रंग की होती हैं, जो उच्च प्रकाश संश्लेषण क्षमता को दर्शाती हैं। यह एक उच्च उत्पादक किस्म है, जिसे विशेष रूप से सिंचित परिस्थितियों के लिए अनुकूलित किया गया है। उचित कृषि प्रबंधन के अंतर्गत इसकी औसत पत्ती उपज लगभग 20,000-24,000 किलोग्राम प्रति एकड़ प्रति वर्ष तक प्राप्त की जा सकती है, जिससे यह वाणिज्यिक रेशम उत्पादन हेतु अत्यंत उपयुक्त मानी जाती है।

एस-36: इस किस्म की पत्तियाँ हृदयाकार, अपेक्षाकृत मोटी बनावट वाली तथा हल्के हरे रंग की होती हैं। इन पत्तियों में आर्द्रता एवं पोषक तत्वों (विशेषतः प्रोटीन एवं घुलनशील कार्बोहाइड्रेट) की पर्याप्त मात्रा पाई जाती है, जो रेशमकीट पालन के लिए पोषण की दृष्टि से उपयुक्त मानी जाती है। उचित कृषि प्रबंधन एवं अनुकूल पर्यावरणीय परिस्थितियों में इसकी औसत पत्ती उपज लगभग 15,000-18,000 किलोग्राम प्रति एकड़ प्रति वर्ष तक प्राप्त की जा सकती है, जिससे यह मध्यम से उच्च उत्पादक श्रेणी में वर्गीकृत की जाती है।

भूमि की तैयारी

रोपण पूर्व भूमि की 30-35 सेमी गहराई तक 2-3 जुताई कर उसे भुरभुरी एवं समुचित भौतिक संरचना युक्त बनाया जाता है। यह प्रक्रिया मृदा के वायुसंचार, जलधारण क्षमता तथा जड़ प्रसार के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ निर्मित करती है। अंतिम जुताई के समय 10-20 टन प्रति हेक्टेयर की दर से पूर्णतः सड़ी हुई गोबर की खाद का समावेशन किया जाता है। इससे मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में सुधार होता है, सूक्ष्मजीव गतिविधि में वृद्धि होती है तथा पौधों की प्रारंभिक वृद्धि एवं स्थापना को प्रोत्साहन मिलता है।

लिए पर्याप्त स्थान उपलब्ध हो सके। सामान्य परिस्थितियों में 90 × 90 सेमी की पौध-से-पौध दूरी अपनाई जाती है, जो पौधों के समुचित वानस्पतिक विकास, प्रकाश अवशोषण तथा वायु संचार के लिए अनुकूल मानी जाती है।

सिंचाई एवं प्रबंधन

मृदा प्रकार एवं प्रचलित मौसमीय परिस्थितियों के अनुसार 8-14 दिनों के अंतराल पर सिंचाई का प्रबंधन किया जाता है, जिससे मृदा में इष्टतम आर्द्रता स्तर बनाए रखा जा सके। अत्यधिक जलभराव से बचाव अत्यावश्यक है, क्योंकि जलसंतृप्त दशाओं में मृदा का वायुसंचार कम हो जाता है, जिससे जड़ों की श्वसन क्रिया प्रभावित होती है, जड़ वृद्धि अवरुद्ध होती है तथा पौधों की समग्र वृद्धि एवं उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

पोषक तत्व प्रबंधन

प्रथम वर्ष में शहतूत की संतुलित पोषण प्रबंधन हेतु 100:50:50 किग्रा एन:पी:के प्रति हेक्टेयर की उर्वरक संस्तुति की जाती है, जिससे पौधों की प्रारंभिक वानस्पतिक वृद्धि, पर्ण विकास एवं जड़ स्थापना को प्रोत्साहन मिलता है। जैविक खादों (गोबर की खाद, वर्मी-कम्पोस्ट) का समावेशन मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणवत्ता में सुधार करता है, सूक्ष्मजीव सक्रियता को बढ़ाता है तथा दीर्घकालिक रूप से मृदा स्वास्थ्य एवं पौध उत्पादकता को सुदृढ़ बनाता है।

निराई-गुड़ाई एवं खरपतवार प्रबंधन

रोपण के लगभग 60 दिनों पश्चात प्रथम निराई-गुड़ाई की जाती है, जबकि 2-3 माह के अंतराल पर द्वितीय निराई की संस्तुति की जाती है। यह क्रिया प्रारंभिक अवस्था में खरपतवार प्रतिस्पर्धा को कम कर



पौधों की समुचित स्थापना एवं वृद्धि सुनिश्चित करती है। इसके उपरांत प्रत्येक पत्ती अथवा शूट कटाई के बाद निराई-गुड़ाई करना आवश्यक होता है, जिससे खरपतवारों का प्रभावी नियंत्रण बना रहे, पोषक तत्वों एवं नमी के लिए प्रतिस्पर्धा कम हो तथा फसल की उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े।

कटाई एवं छंटाई

रोपण के लगभग तीन माह पश्चात आधार स्तर से प्राथमिक छंटाई की जाती है, जिसका उद्देश्य पार्श्व शाखाओं के विकास को प्रोत्साहित करना तथा संतुलित छत्र संरचना का निर्माण करना होता है। लगभग छह माह के पश्चात मुख्य तने को भूमि सतह से लगभग 30 सेमी ऊँचाई पर काटकर 'प्रूनिंग टेबल' विकसित की जाती है। इस प्रक्रिया से समान ऊँचाई पर बहुसंख्यक एवं समरूप नई शाखाओं का उद्भव होता है, जिससे पत्ती उत्पादन में वृद्धि होती है तथा बेहतर गुणवत्ता की पत्तियाँ प्राप्त होती हैं, जो रेशमकीट पालन के लिए उपयुक्त होती हैं।

कटाई एवं उपज

रोपण के लगभग 9 माह पश्चात शहतूत में पत्ती कटाई प्रारंभ की जा सकती है, जब पौधे पर्याप्त वानस्पतिक विकास प्राप्त कर लेते हैं। पत्तियों की प्राप्ति चयनात्मक पत्ती तोड़ाई अथवा शूट कटाई विधि द्वारा की जाती है, जो प्रबंधन प्रणाली एवं रेशमकीट पालन की आवश्यकता पर निर्भर करती है। उचित कृषि प्रबंधन, उर्वरक अनुप्रयोग एवं सिंचाई व्यवस्था के अंतर्गत शहतूत की औसत वार्षिक पत्ती उपज लगभग 25-30 टन प्रति हेक्टेयर तक प्राप्त की जा सकती है, जो रेशम उत्पादन के लिए एक महत्वपूर्ण आधार प्रदान करती है।

कटाई उपरांत प्रबंधन

शहतूत फल का स्वाद खट्टा-मीठा होता है और आमतौर पर इसे ताजा खाया जाता है। कटाई उपरांत पत्तियों को छायादार, शीतल एवं नियंत्रित आर्द्रता वाले स्थान पर रखा जाता है, ताकि उनकी ताजगी, कोमलता एवं आंतरिक नमी संरक्षित रहे तथा रेशमकीट के लिए उनकी पोषण गुणवत्ता में कमी न आए। फलों को परिपक्वता अवस्था के अनुसार सावधानीपूर्वक तोड़कर एकत्रित किया जाता है। तत्पश्चात उन्हें ताजा उपभोग, प्रसंस्करण (जैसे जूस, जैम आदि) अथवा अल्पकालीन भंडारण के लिए उपयुक्त परिस्थितियों में वर्गीकृत एवं संग्रहीत किया जाता है, जिससे उनकी गुणवत्ता एवं पोषण मूल्य सुरक्षित रखा जा सके।

रोग एवं कीट

पत्ती धब्बा रोग: इस रोग में पत्तियों के दोनों सतहों पर हल्के भूरे रंग के गोलाकार अथवा अनियमित धब्बे विकसित हो जाते हैं, जो समय के साथ आपस में मिलकर बड़े नेक्रोटिक क्षेत्र का रूप ले लेते हैं। संक्रमण की तीव्र अवस्था में पत्तियों का समयपूर्व पतन देखा जाता है, जिससे प्रकाश संश्लेषण क्षमता एवं पत्ती उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। यह रोग मुख्यतः शीतकाल एवं वर्षा ऋतु में, उच्च आर्द्रता एवं मध्यम तापमान की परिस्थितियों में अधिक प्रकोपित होता है। रोग प्रबंधन हेतु कार्बेन्डाजिम 50 प्रतिशत WP का 2 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से घोल तैयार कर पत्तियों पर समुचित छिड़काव किया जाता है, जिससे रोगजनक कवक की वृद्धि एवं प्रसार को नियंत्रित किया जा सके।

पाउडरी मिल्ड्यू: इस रोग में पत्तियों की निचली सतह पर श्वेत चूर्णीय आवरण विकसित होता है, जो मुख्यतः कवकीय मायसेलियम एवं बीजाणुओं से निर्मित होता है। संक्रमण की प्रगति के साथ यह आवरण पत्ती के बड़े भाग को आच्छादित कर लेता है, जिससे पत्तियाँ क्लोरोसिस प्रदर्शित करती हैं, पीली पड़ जाती हैं तथा अंततः समयपूर्व पतन हो सकता है। इससे प्रकाश संश्लेषण एवं पत्ती उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। रोग प्रबंधन हेतु सल्फर 80 प्रतिशत WP का 2 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर समुचित छिड़काव किया जाता है, जिससे रोगजनक के विकास एवं प्रसार को प्रभावी रूप से नियंत्रित किया जा सके।

तना छेदक कीट एवं छाल-भक्षी इल्ली: ये कीट तनों में छिद्र बनाकर आंतरिक ऊतकों को क्षति पहुँचाते हैं, जिससे पौधों की जल एवं पोषक तत्व संचरण प्रणाली प्रभावित होती है तथा पौधों की वृद्धि एवं उत्पादकता में कमी आती है। प्रबंधन हेतु तनों में बने छिद्रों को यांत्रिक रूप से साफ कर उनमें 50:50 अनुपात में केरोसिन एवं क्लोरपाइरीफोस 20 ई सी (2-3 मि.ली. प्रति लीटर पानी) से उपचारित रूई प्रविष्ट कराई जाती है। तत्पश्चात छिद्र को चिकनी मिट्टी से सील कर दिया जाता है, जिससे कीटनाशी का प्रभाव छिद्र के भीतर बने सुरंगों में उपस्थित कीटों तक पहुँचता है और उनका प्रभावी नियंत्रण सुनिश्चित होता है।





CSC
Common Services Center

Digital India
Power To Empower

ग्रामीण भारत में जन सेवा केंद्र (कॉमन सर्विस सेंटर) डिजिटल समावेशन की दिशा में एक महत्वपूर्ण पहल

लेफ्ट डॉ. सिम्पल जैन

सह प्राध्यापक

आस्पी पोषण और सामुदायिक विज्ञान महाविद्यालय, सरदारकृषिनगर दांतीवाड़ा कृषि यूनिवर्सिटी, सरदारकृषिनगर गुजरात

सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के तीव्र विकास ने विश्वभर में शासन प्रणालियों को परिवर्तित कर दिया है। सरकारें अब सेवाओं को अधिक कुशल, पारदर्शी और कम लागत में प्रदान करने के लिए डिजिटल प्लेटफॉर्म का उपयोग कर रही हैं। इस परिवर्तन को सामान्यतः इलेक्ट्रॉनिक गवर्नेंस (ई-गवर्नेंस) कहा जाता है, जिसका अर्थ है सरकार द्वारा इंटरनेट और डिजिटल तकनीकों के माध्यम से नागरिकों को सूचना और सेवाएँ प्रदान करना। भारत जैसे विकासशील देशों में डिजिटल गवर्नेंस की आवश्यकता विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, क्योंकि यहाँ बड़ी जनसंख्या, जटिल प्रशासनिक संरचना और व्यापक भौगोलिक विविधता है। सूचना और संचार प्रौद्योगिकी अवसंरचना में उल्लेखनीय प्रगति के बावजूद, ग्रामीण और दूरस्थ क्षेत्रों में रहने वाली बड़ी आबादी अभी भी डिजिटल सेवाओं तक सीमित पहुँच का सामना कर रही है। शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के बीच डिजिटल विभाजन समान विकास और समावेशी शासन के लिए एक बड़ी बाधा बना हुआ है। इस अंतर को कम करने के लिए भारत सरकार ने 2006 में राष्ट्रीय ई-गवर्नेंस योजना के अंतर्गत जन सेवा केंद्र (कॉमन सर्विस सेंटर) योजना शुरू की। इस पहल का उद्देश्य

गाँव स्तर पर सूचना और संचार प्रौद्योगिकी सक्षम सेवा केंद्र स्थापित करना है, जहाँ स्थानीय उद्यमी, जिन्हें ग्राम स्तरीय उद्यमी कहा जाता है, नागरिकों को सरकारी सेवाएँ उपलब्ध कराते हैं। समय के साथ जन सेवा केंद्र, डिजिटल इंडिया पहल का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन गए हैं, जो प्रमाणपत्र, बैंकिंग, टेलीमेडिसिन, शिक्षा, डिजिटल साक्षरता और उपयोगिता भुगतान जैसी अनेक सेवाएँ प्रदान करते हैं। ये केंद्र उन ग्रामीण नागरिकों के लिए डिजिटल द्वार का कार्य करते हैं, जिनके पास सीधे ऑनलाइन प्लेटफॉर्म तक पहुँच नहीं है। हालांकि, इनके व्यापक प्रभाव के बावजूद, जन सेवा केंद्र कई संरचनात्मक, तकनीकी और सामाजिक-आर्थिक चुनौतियों का सामना करते हैं।

जन सेवा केंद्र (कॉमन सर्विस सेंटर) की अवधारणा और संरचना

जन सेवा केंद्र गाँव स्तर पर स्थापित सूचना और संचार प्रौद्योगिकी सक्षम सेवा केंद्र हैं, जहाँ नागरिकों को डिजिटल सेवाएँ प्रदान की जाती हैं। ये केंद्र डिजिटल कियोस्क के रूप में कार्य करते हैं। यह विशेष रूप से उन क्षेत्रों के लिए वरदान है जहाँ डिजिटल साक्षरता और



इंटरनेट की पहुँच कम है। जन सेवा केंद्र की तीन-स्तरीय संरचना होती है जो सार्वजनिक-निजी साझेदारी मॉडल पर आधारित है।

1. ग्राम स्तरीय उद्यमी: ये ग्रामीण स्तर पर जन सेवा केंद्र का संचालन करते हैं और नागरिकों को सेवाएँ प्रदान करते हैं। ये जन सेवा केंद्रों का संचालन करने, समुदाय के साथ जुड़ने तथा यह सुनिश्चित करने के लिए जिम्मेदार होते हैं कि सभी लोगों तक सेवाएँ सुगमता से पहुँच सकें। ग्राम स्तरीय उद्यमी को विभिन्न सेवाओं की समझ, डिजिटल प्लेटफॉर्म के उपयोग और ग्राहक सेवा कौशल विकसित करने के लिए प्रशिक्षण दिया जाता है।

2. सेवा केंद्र एजेंसी: जो 500-1000 CSCs के एक डिवीजन के लिए जिम्मेदार होता है।

3. राज्य नामित एजेंसियाँ: ये राज्य स्तर पर जन सेवा केंद्र की सेवाओं के समन्वय और कार्यान्वयन का कार्य करती हैं।

जन सेवा केंद्र (कॉमन सर्विस सेंटर) द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाएँ

जन सेवा केंद्र (कॉमन सर्विस सेंटर) विभिन्न प्रकार की सेवाएँ प्रदान करते हैं, जिन्हें व्यापक रूप से पाँच मुख्य श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

1. ई-गवर्नेंस सेवाएँ:

- ✓ **आधार (Aadhaar):** आधार नामांकन, अद्यतन और बायोमेट्रिक प्रमाणीकरण से संबंधित सेवाएँ।
- ✓ **पैन कार्ड:** नए पैन कार्ड के लिए आवेदन और उसमें संशोधन।
- ✓ **राशन कार्ड:** राशन कार्ड के लिए आवेदन और अद्यतन।
- ✓ **प्रमाण पत्र:** जन्म, मृत्यु और विवाह प्रमाण पत्र जारी करना।
- ✓ **अन्य सेवाएँ:** वोटर आईडी, ड्राइविंग लाइसेंस आवेदन आदि।

2. वित्तीय सेवाएँ:

- ✓ **बैंकिंग सेवाएँ:** जन धन खाते खोलना, जमा, निकासी और मिनी स्टेटमेंट।
- ✓ **बीमा:** जीवन बीमा, स्वास्थ्य बीमा और वाहन बीमा।
- ✓ **पेंशन योजनाएँ:** अटल पेंशन योजना, राष्ट्रीय पेंशन प्रणाली।
- ✓ **ऋण सेवाएँ:** ऋण के लिए आवेदन और ईएमआई भुगतान।

3. शिक्षा:

- ✓ **ऑनलाइन शिक्षा:** विभिन्न पाठ्यक्रम और प्रमाणन कार्यक्रम।
- ✓ **प्रतियोगी परीक्षा तैयारी:** एसएससी, बैंकिंग, रेलवे आदि परीक्षाओं के लिए कोर्स।

✓ **छात्रवृत्ति आवेदन:** विभिन्न सरकारी और निजी छात्रवृत्तियों के लिए आवेदन।

✓ **कौशल विकास:** विभिन्न कौशल विकास कार्यक्रम।

4. स्वास्थ्य सेवाएँ:

- ✓ **टेलीमेडिसिन:** डॉक्टरों से ऑनलाइन परामर्श।
- ✓ **स्वास्थ्य बीमा:** स्वास्थ्य बीमा योजनाओं के लिए आवेदन।
- ✓ **स्वास्थ्य जानकारी:** विभिन्न स्वास्थ्य योजनाओं और सेवाओं की जानकारी।

5. अन्य सेवाएँ:

- ✓ **बिल भुगतान:** बिजली, पानी, गैस और टेलीफोन बिलों का भुगतान।
- ✓ **रिचार्ज सेवाएँ:** मोबाइल और डीटीएच रिचार्ज।
- ✓ **टिकट बुकिंग:** रेल, बस और हवाई टिकट बुकिंग।
- ✓ **ई-कॉमर्स:** ऑनलाइन खरीदारी और होम डिलीवरी।

ग्रामीण विकास में जन सेवा केंद्र (कॉमन सर्विस सेंटर) की भूमिका

- ✓ **डिजिटल विभाजन को कम करना-** जन सेवा केंद्र (कॉमन सर्विस सेंटर) ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल सेवाओं की पहुँच सुनिश्चित करते हैं।
- ✓ **पारदर्शिता बढ़ाना-** ऑनलाइन सेवाएँ भ्रष्टाचार और बिचौलियों को कम करती हैं।
- ✓ **स्थानीय उद्यमिता को बढ़ावा-** ग्राम स्तरीय उद्यमी के माध्यम से रोजगार और आय के अवसर बढ़ते हैं।
- ✓ **समावेशी विकास-** महिलाओं, बुजुर्गों और कमजोर वर्गों को सेवाओं तक पहुँच मिलती है।

जन सेवा केंद्र (कॉमन सर्विस सेंटर) का प्रभाव

जन सेवा केंद्र (कॉमन सर्विस सेंटर) केवल एक सेवा केंद्र नहीं है, बल्कि यह ग्रामीण भारत के सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन का एक शक्तिशाली इंजन बन गया है।

विशाल नेटवर्क और पहुँच- वर्तमान में भारत भर में 5.5 लाख से अधिक सक्रिय जन सेवा केंद्र (कॉमन सर्विस सेंटर) केंद्र कार्यरत हैं। इनमें से लगभग 4.3 लाख से अधिक केंद्र केवल ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित हैं, जो सीधे तौर पर देश की 60% से अधिक आबादी को सेवा दे रहे हैं। लगभग हर ग्राम पंचायत में कम से कम एक जन सेवा केंद्र (कॉमन सर्विस सेंटर) की उपलब्धता सुनिश्चित की गई है।



वित्तीय समावेशन- जन सेवा केंद्र (कॉमन सर्विस सेंटर) ने ग्रामीण इलाकों में "मिनी बैंक" की भूमिका निभाई है, जहाँ बैंक की शाखाएँ नहीं पहुँच सकीं। 1.5 लाख से अधिक ग्राम स्तरीय उद्यमी बैंकिंग कोरेस्पोंडेंट (BC) के रूप में कार्य कर रहे हैं। जन सेवा केंद्र (कॉमन सर्विस सेंटर) के माध्यम से अरबों रुपये का लेनदेन (आधार सक्षम भुगतान प्रणाली और अन्य माध्यमों से) होता है, जिससे ग्रामीणों को पेंशन और सब्सिडी निकालने के लिए शहर नहीं जाना पड़ता। फसल बीमा और जीवन बीमा की पहुँच ग्रामीण क्षेत्रों में 30% तक बढ़ी है।

डिजिटल साक्षरता- प्रधानमंत्री ग्रामीण डिजिटल साक्षरता अभियान के तहत जन सेवा केंद्र (कॉमन सर्विस सेंटर) ने एक नया कीर्तिमान स्थापित किया है। अब तक 4 करोड़ से अधिक ग्रामीण नागरिकों को डिजिटल रूप से साक्षर बनाया जा चुका है। ग्रामीण महिलाएं अब स्मार्टफोन और ऑनलाइन बैंकिंग का उपयोग करने में सक्षम हुई हैं।

स्वास्थ्य और शिक्षा- जन सेवा केंद्र (कॉमन सर्विस सेंटर) के माध्यम से अब तक 10 लाख से अधिक टेली-कंसल्टेशन (ऑनलाइन डॉक्टर परामर्श) किए जा चुके हैं। कॉमन सर्विस सेंटर एकेडमी' के माध्यम से लाखों छात्र प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी ग्रामीण केंद्रों से ही कर रहे हैं।

रोजगार सृजन- 5.5 लाख ग्राम स्तरीय उद्यमी के माध्यम से लगभग 15 लाख से अधिक लोगों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से रोजगार मिला है। लगभग 50000 से अधिक महिलाएं सफलतापूर्वक इन केंद्रों का संचालन कर रही हैं, जिससे ग्रामीण परिवेश में उनकी सामाजिक स्थिति सुधरी है।

जन सेवा केंद्र (कॉमन सर्विस सेंटर) के सामने चुनौतियाँ

- **अवसंरचना की कमी-** कमजोर इंटरनेट, बिजली की समस्या और उपकरणों की कमी।
- **कम डिजिटल साक्षरता-** लोग तकनीक का उपयोग करने में सक्षम नहीं हैं।

- **जागरूकता की कमी-** जन सेवा केंद्र सेवाओं के बारे में जानकारी का अभाव।
- **ग्राम स्तरीय उद्यमी की सीमित क्षमता-** तकनीकी ज्ञान की कमी और प्रबंधन कौशल की कमी।
- **वित्तीय समस्याएँ-** कम आय के कारण जन सेवा केंद्र (कॉमन सर्विस सेंटर) टिकाऊ नहीं रह पाते।
- **नीतिगत बाधाएँ-** विभागों के बीच समन्वय की कमी।

नीतिगत सुझाव

- ✓ डिजिटल अवसंरचना को मजबूत करना,
- ✓ डिजिटल साक्षरता कार्यक्रमों का विस्तार,
- ✓ ग्राम स्तरीय उद्यमी के लिए प्रशिक्षण बढ़ाना,
- ✓ अधिक सेवाओं का एकीकरण,
- ✓ महिला उद्यमिता को बढ़ावा देना,
- ✓ डेटा सुरक्षा सुनिश्चित करना

निष्कर्ष

जन सेवा केंद्र (कॉमन सर्विस सेंटर) भारत में डिजिटल विभाजन को कम करने और ग्रामीण क्षेत्रों में सेवाएँ पहुँचाने का एक प्रभावी माध्यम हैं। इन्होंने पारदर्शिता, दक्षता और समावेशी विकास को बढ़ावा दिया है। हालाँकि, अवसंरचना, जागरूकता और प्रशिक्षण से जुड़ी चुनौतियाँ अभी भी मौजूद हैं। यदि इन समस्याओं का समाधान किया जाए, तो जन सेवा केंद्र (कॉमन सर्विस सेंटर) ग्रामीण भारत के डिजिटल सशक्तिकरण का एक मजबूत आधार बन सकते हैं। डिजिटल गवर्नेंस की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि सेवाएँ अंतिम व्यक्ति तक कितनी प्रभावी ढंग से पहुँचती हैं। इस दृष्टि से जन सेवा केंद्र (कॉमन सर्विस सेंटर) एक महत्वपूर्ण साधन हैं।





स्मार्ट फार्मिंग: आईओटी-सक्षम सेंसर और ड्रोन द्वारा प्रिसिजन एग्रीकल्चर

*किशोर आनेराव- पीएच.डी. शोधार्थी, हेमंत देशपांडे- प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष
खाद्य सूक्ष्मजीवविज्ञान एवं सुरक्षा विभाग, कॉलेज ऑफ फूड टेक्नोलॉजी
प्रत्युष कुमारी रथ- पीएच.डी. शोधार्थी, अर्थशास्त्र विभाग, कॉलेज ऑफ एग्रीकल्चर
वसंतराव नाईक मराठवाड़ा कृषि विद्यापीठ (VNMKV), परभणी।

यह समीक्षा "स्मार्ट फार्मिंग: आईओटी-सक्षम सेंसर और ड्रोन के ज़रिए प्रिसिजन एग्रीकल्चर" पर हुए शोध को संक्षेपित करती है। इसमें तकनीकी पहलुओं, प्रभावों और लाभों, क्षेत्रीय अनुप्रयोगों तथा चुनौतियों पर ध्यान केंद्रित किया गया है ताकि वैश्विक संसाधन और जलवायु दबावों के बीच टिकाऊ कृषि प्रौद्योगिकी अपनाने में मौजूद खामियों को संबोधित किया जा सके। समीक्षा का उद्देश्य वर्तमान आईओटी और ड्रोन तकनीकों का मूल्यांकन करना, स्मार्ट फार्मिंग प्रणालियों की तुलना करना, उत्पादकता और स्थिरता पर प्रभावों का विश्लेषण करना, क्षेत्रीय अपनाने के पैटर्न को समझना और कार्यान्वयन से जुड़ी चुनौतियों की पहचान करना था। अध्ययन से यह सामने आया कि उन्नत सेंसर और मशीन लर्निंग अनुप्रयोगों से उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि और संसाधन दक्षता प्राप्त हुई है। पर्यावरणीय लाभों में जल संरक्षण और रसायनों के कम उपयोग को रेखांकित किया गया। हालाँकि, क्षेत्रीय अपनाने में काफी विविधता पाई गई जो बुनियादी ढाँचे, सामाजिक-आर्थिक और नीतिगत कारकों से प्रभावित होती है। विकासशील क्षेत्रों में लागत, कनेक्टिविटी और डिजिटल साक्षरता से संबंधित बाधाएँ अधिक पाई गईं। लगातार मौजूद चुनौतियों में डेटा गोपनीयता, नियामकीय प्रतिबंध और स्केलेबिलिटी की सीमाएँ शामिल हैं। फिर भी, AIoT प्रणालियों का एकीकरण स्वचालन और निर्णय समर्थन को और सशक्त करने का वादा करता है। समग्र रूप से, प्रमाण बताते हैं कि आईओटी-सक्षम स्मार्ट फार्मिंग परिवर्तनकारी क्षमता रखती है, लेकिन तकनीकी और सामाजिक-आर्थिक बाधाओं को

दूर करने के लिए समावेशी, संदर्भ-विशिष्ट रणनीतियाँ और मजबूत नीतिगत ढाँचे आवश्यक हैं।

भूमिका

स्मार्ट फार्मिंग पर शोध, विशेषकर आईओटी-सक्षम सेंसर और ड्रोन के माध्यम से प्रिसिजन एग्रीकल्चर, एक महत्वपूर्ण क्षेत्र बन गया है। इसका कारण यह है कि यह खाद्य सुरक्षा, जलवायु परिवर्तन और संसाधनों के टिकाऊ प्रबंधन जैसी वैश्विक चुनौतियों से निपटने में मदद कर सकता है।

प्रिसिजन एग्रीकल्चर का विकास 1980 और 1990 के दशक के जीपीएस-आधारित उपकरणों से लेकर आधुनिक आईओटी और एआई संचालित प्रणालियों तक पहुँचा है। ये प्रणालियाँ वास्तविक समय में निगरानी और डेटा-आधारित निर्णय लेने की क्षमता देती हैं।

इस तकनीकी प्रगति के सामाजिक और व्यावहारिक प्रभाव भी हैं—जैसे फसल उत्पादन में वृद्धि, संसाधनों का बेहतर उपयोग और पर्यावरणीय प्रभावों में कमी। ये सभी उस बढ़ती वैश्विक जनसंख्या को खिलाने के लिए अहम हैं जो 2050 तक 9.7 अरब तक पहुँचने का अनुमान है। उदाहरण के तौर पर, आईओटी-आधारित सिंचाई प्रणालियों ने जल उपयोग दक्षता में 20% तक सुधार दिखाया है।

फिर भी, स्मार्ट फार्मिंग तकनीकों को अपनाने और लागू करने में कुछ खास चुनौतियाँ बनी हुई हैं। इनमें उच्च प्रारंभिक लागत, ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल ढाँचे की कमी, डेटा गोपनीयता से जुड़ी चिंताएँ और



किसानों को प्रशिक्षण की आवश्यकता शामिल हैं। साथ ही, अलग-अलग क्षेत्रों और फसलों में आईओटी सेंसर और ड्रोन के एकीकरण पर ज्ञान की कमी है, और सामाजिक-आर्थिक व नियामकीय अवरोध भी मौजूद हैं।

अगर इन खामियों को दूर नहीं किया गया तो प्रिसिजन एग्रीकल्चर का व्यापक अपनाना बाधित हो सकता है, जिससे स्थिरता और उत्पादकता बढ़ाने की इसकी क्षमता सीमित रह जाएगी।

तुलनात्मक विश्लेषण

यह तुलनात्मक विश्लेषण पाँच प्रमुख प्रश्नों को संबोधित करता है:

- ✓ तकनीकी नवाचार,
- ✓ उत्पादकता पर प्रभाव,
- ✓ क्षेत्रीय अपनाने की दर,
- ✓ चुनौतियों की पहचान और समाधान,
- ✓ स्थिरता के परिणाम

अध्ययन	तकनीकी नवाचार	उत्पादकता पर प्रभाव	क्षेत्रीय अपनाने की दर	चुनौतियाँ	स्थिरता परिणाम
Guebsi <i>et al.</i> , 2024	मल्टीस्पेक्ट्रल सेंसर और एआई एकीकरण वाले ड्रोन	उत्पादन अनुमान व सिंचाई प्रबंधन सुधार	वैश्विक केस स्टडी	नियामकीय व आर्थिक अवरोध, BVLOS प्रतिबंध	संसाधन सुधार, शीघ्र रोग पहचान
Arularasan <i>et al.</i> , 2024	आईओटी-कनेक्टेड ड्रोन, मशीन लर्निंग	20% उत्पादन और जल दक्षता वृद्धि	शुष्क क्षेत्र	तकनीकी जटिलता व लागत	जल संरक्षण, लागत कमी
Ranjan <i>et al.</i> , 2025	एआई ड्रोन व सेंसर	उत्पादन वृद्धि व लागत कमी	वैश्विक, स्थिरता पर जोर	उच्च लागत, गोपनीयता चिंताएँ	पर्यावरणीय प्रभाव कम
Chithra <i>et al.</i> , 2024	एआई+ड्रोन+जमीनी सेंसर सिंचाई	जल दक्षता व उत्पादकता सुधार	शुष्क क्षेत्र	ढाँचे व श्रम की कमी	जल अपव्यय, कमी, जलवायु सहनशीलता

शक्तियाँ और कमजोरियाँ

- तकनीकी प्रगति
- शक्तियाँ: स्मार्ट फार्मिंग में बड़ी तकनीकी छलाँग — जैसे मल्टीस्पेक्ट्रल ड्रोन, एआई आधारित रोग पहचान।
- कमजोरियाँ: उपकरण कठिन परिस्थितियों में सीमित टिकाऊपन और जटिल एकीकरण

उत्पादकता और स्थिरता

- शक्तियाँ: उत्पादन वृद्धि, संसाधन बचत और पर्यावरणीय प्रभाव में कमी।
- कमजोरियाँ: ज्यादातर छोटे स्तर के पायलट अध्ययनों पर आधारित, दीर्घकालिक आँकड़े सीमित

क्षेत्रीय अनुप्रयोग

- शक्तियाँ: स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार तकनीक ढालने से अपनाने में सुधार।
- कमजोरियाँ: अलग-अलग जलवायु/फसल प्रणालियों के बीच तुलना की कमी।

चुनौतियाँ

- शक्तियाँ: लागत, गोपनीयता, नियमन जैसी बाधाएँ स्पष्ट रूप से पहचानी गईं।
- कमजोरियाँ: व्यावहारिक समाधान और नीति सुझाव कम, डेटा स्वामित्व व रोजगार जैसे मुद्दे अनदेखे।

निष्कर्ष

स्मार्ट फार्मिंग तकनीकें, खासकर आईओटी-सक्षम सेंसर और ड्रोन, प्रिसिजन एग्रीकल्चर में क्रांति ला रही हैं। ये उत्पादन बढ़ाने, संसाधनों का बेहतर उपयोग करने और पर्यावरणीय स्थिरता को समर्थन देने में मदद कर रही हैं। AI एकीकरण, एज कंप्यूटिंग और स्वायत्त प्रणालियों जैसी नवाचारों की बड़ी क्षमता है, लेकिन इनके सामने व्यावहारिक चुनौतियाँ भी हैं—जैसे ऊँची लागत, डेटा गोपनीयता की समस्याएँ और ग्रामीण ढाँचे की कमी। जहाँ कुछ स्थानीय सफलताएँ दिखती हैं, वहीं व्यापक अपनाने में सामाजिक-आर्थिक और नीतिगत अंतराल अड़चन बने हुए हैं। स्मार्ट फार्मिंग की पूरी क्षमता का उपयोग करने के लिए समावेशी रणनीतियाँ, किफायती समाधान और मजबूत नीतिगत ढाँचे ज़रूरी हैं।



कृषक मंच - अप्रैल 2026 संस्करण

लोकप्रिय लेखों के लिए आमंत्रण

वेबसाइट: krishakmanch.com

अंतिम तिथि: 28 अप्रैल 2026

लेख के विषय:

- कृषि विज्ञान के प्रमुख क्षेत्र: एग्रोनॉमी, बागवानी, कीट विज्ञान, रोग विज्ञान, कृषि प्रसार, कृषि अर्थशास्त्र, जैव प्रौद्योगिकी आदि।
- नवीनतम कृषि तकनीकें।
- फसल प्रबंधन एवं रोग नियंत्रण।
- जैविक खेती एवं प्राकृतिक कृषि।
- जल संरक्षण व सिंचाई तकनीकें।
- सरकारी योजनाएं।

हमारे व्हाट्सएप समूह से जुड़ें:

